विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष-१० नवम्बर-दिसम्बर-१९९१ अंक ११-१२

कर्म, ज्ञान भक्ति और योग—इनमें से एक या अनेक या सभी द्वारा परमात्मा उपलब्ध होते हैं।

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा—८४१३०१

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

७४. [illegible] उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कुमार प्रभाकर राव [illegible] (महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, मुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भुवनाथ प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक मलित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे सिवनी मालवा (म० प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. डी. जे हेमनानी नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर चमरिया—बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता—परोना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कल्ला जबपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल तुंगारे पुणे (महाराष्ट्र)
९१. श्रीमती कमला घोष इलाहाबाद
९२. श्री एस. डी शर्मा अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा मार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री [illegible] मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० [illegible]—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आई. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, [illegible]—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—[illegible] (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ आमतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री बसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक अजमेर राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेण्डे पुणे (महाराष्ट्र)
११२. श्री वि य प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० बी० सी० सिन्हा रांची (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह—रांची (मध्य प्रदेश)

इस अंक में

१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है — श्री चारुचन्द्र विद्यार्णव
२. श्री सारदेश्वरी ध्यानम् — (सम्पादकीय सम्बोधन)
३. बिहार में श्री माँ सारदा देवी — ब्र० रवीन्द्र
४. माँ काली — स्वामी निखिलात्मानन्द
५. श्री माँ सारदा देवी — श्री ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
६. विनम्रता — स्वामी त्यागानन्द
७. अमृत्य धारा — स्वामी शशाकानन्द
८. शिष्यत्व की चार शर्तें — स्वामी विवेकानन्द
९. कुएँ का मेढ़क — चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
१०. स्वामी अखण्डानन्द की जीवन कथा

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष १० | १९९१—नवम्बर, दिसम्बर | अंक—११-१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएं एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

वह (श्रीमाँ सारदा देवी) सारदा हैं—सरस्वती हैं। ज्ञान देने के लिए आई हैं। सौन्दर्य रहने पर उसे अशुद्ध भाव से देखने के कारण कहीं लोगों का अमंगल न हो जाय, इसी से इस बार रूप छिपाकर आई है।

(२)

वह (श्रीमाँ सारदा देवी) ज्ञानदायिनी, महाबुद्धिमती है। वह क्या ऐसी-वैसी है ? वह मेरी शक्ति है ! ··· ··· अरे, उसका नाम सारदा है, वह सरस्वती है; इसी से वह सज-धजकर रहना चाहती है।

(३)

यदि वह (श्रीमाँ सारदा देवी) इतनी पवित्र न होती और संयम खोकर मुझ पर आक्रमण कर बैठती तो कौन कह सकता है कि मेरे संयम का बाँध टूटकर देहबुद्धि आ जाती कि नहीं ?

(४)

अरे हृदय, (अपने शरीर की ओर संकेत करते हुए) इसके भीतर जो है, उसकी फुफकार से तो तुम रक्षा पा भी सकते हो, पर उसके (श्रीमाँ सारदा देवी के) भीतर जो है, उसकी फुफकार से ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी तुम्हारी रक्षा न कर सकेंगे।

(५)

सासू माँ, इसके लिए दुःख न करो। तुम्हारी बेटी (श्रीमाँ सारदा देवी) के इतने बाल-बच्चे होंगे कि अन्त में देखोगी वह 'माँ-माँ' सुनते-सुनते परेशान हो जायगी।

श्री श्रीसारदेश्वरी ध्यानम्

—श्री चारुचन्द्र विद्यार्णव

द्विभुजां हेमगौराङ्गीं वस्त्रालंकार-शोभिनीम् ।
मुक्तकेशीं जगद्धात्रीं अचिन्त्यशक्तिरूपिणीम् ॥१॥

पद्मासनां पद्महस्तां पद्मनेत्रां सुहासिनीम् ।
वराभयकरां देवीं साधकाभीष्टदायिनीम् ॥२॥

रामकृष्ण-गतप्राणां रामकृष्ण-परायणाम् ।
रामकृष्णमयीं राम-कृष्ण भक्ति-प्रदायिनीम् ॥३॥

लज्जास्वर विभूषितां पतिव्रताशिरोमणिम् ।
पतिकथारतां दिव्यां नाना सद्गुणधारिणीम् ॥४॥

पतिलोकगतां सौम्यां नित्यविद्यास्वरूपिणीम् ।
ध्यायेत् प्रयत्नतो नित्यं मातरं सारदेश्वरीम् ॥५॥

भावार्थ :— द्विभुजधारिणी, शुद्ध सोने की भांति उज्वल, शुभ्र अंग विशिष्टा, सुन्दर वस्त्र और अलंकारों से सुशोभिता, खुले केशों से युक्ता, जगद्धात्री स्वरुपा, अकल्पनीय पुंजीभूत विमूर्त शक्तिरूपा, पद्मासन में बैठी, कमल सदृश कोमल हस्तयुक्ता, कमल की भाँति मनोहर दीर्घ नयनोंवाली, सुहासिनी, वर और अभय-मुद्रा शोभित हस्तविशिष्टा, साधकों की कामनाओं को पूर्ण करनेवाली, श्रीरामकृष्ण में अपने प्राण समर्पित करनेवाली, श्रीरामकृष्ण श्रेष्ठ आश्रयदाता हैं—ऐसा भाव रखनेवाली, श्रीरामकृष्णमय जीविता, भक्तों को श्रीरामकृष्ण के प्रति भक्ति-अनुराग प्रदान करनेवाली एवं लज्जारूपी वस्त्रों से विभूषिता, पतिव्रता नारियों में शिरोमणि, श्रीरामकृष्ण की कथानुरागिनी, विभिन्न सद्गुणों को धारण करनेवाली, पतिलोकगता, सौम्यमूर्ति धारिणी, नित्य मूर्तिमती विद्यादेवी स्वरूपिणी, जगन्माता श्रीसारदादेवी का प्रयत्नपूर्वक नित्य ध्यान करना भक्तों का परम कर्तव्य है ।

सम्पादकीय सम्बोधन

बिहार में श्री माँ सारदा देवी

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

कभी-कभी मेरी दृष्टि में वे दृश्य साकार होकर भासमान हो उठते हैं जिनमें श्रीरामकृष्ण देव, श्री माँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द बिहार की भूमि पर अपनी लीला के द्वारा एक महान घटनाक्रम का प्रवर्तन करते दिखाई पड़ते हैं। नाचने लगते हैं मेरी आँखों के सामने वे ऐतिहासिक, अविस्मरणीय, पुलक भरे क्षण जब श्रीरामकृष्ण के पिता श्री खुदीराम को गया में भगवान श्रीविष्णु ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा था कि इस बार मैं तुम्हारे घर में अवतरित होऊंगा। बिहार के गया धाम में स्थित श्रीविष्णुपाद के मन्दिर में यदि यह एक घटना घटित नहीं हुई होती तो कौन जानता है कि श्रीरामकृष्ण अवतरित होते या नहीं ! जो भी हो, इस एक घटना के फलस्वरूप एक ऐसे पुरुषोत्तम का अवतरण हुआ जिन्होंने विश्व-मानवता को एक नयी चेतना दी, सभी धर्मों को उसकी सत्यता का अभिप्रमाण दिया और हिन्दू धर्म की ग्लानि को अपनी अविरल मौन साधना से ही मिटा दिया।

श्रीरामकृष्ण ने शिव भाव से जीव सेवा का जो महामंत्र दिया था उसका प्रथम प्रदर्शन भी उन्होंने बिहार के वैद्यनाथ धाम में ही संथालों की सेवा के माध्यम से किया। कैसा रहा होगा वह क्षण जब एक ओर काशी विश्वनाथ का दर्शन और दूसरी ओर भूखे-सूखे संथालियों को अन्न-वस्त्र देने के प्रश्न पर श्रीरामकृष्ण ने संथालियों का पक्ष लिया होगा ! इस एक घटना ने संसार को एक नयी जीवन-दृष्टि दी। विश्वनाथ काशी के मंदिर में ही कैद नहीं हैं वरन् वे रूखे-भूखे संथालियों में भी हैं। नर में नारायण और जीव में शिव देखने की कैसी थी वह दिव्य दृष्टि! उस दृष्टि का उन्मेष बिहार को पावन भूमि पर करके ठाकुर ने धर्म को एक नया आयाम दिया, एक अभिनव दिशा दी।

जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण के अवतरण के मूल में अंतःसलिला की भाँति बिहार है उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण देव के एक अन्यतम धर्म-दर्शन के निदर्शन के मूल में भी बिहार ही है।

और श्रीरामकृष्ण संघ की स्थापना का बीज भी बिहार की मिट्टी पर ही अंकुरित हुआ। मैं थोड़ी देर के लिए उस काल खण्ड में चला जाता हूँ जब श्री श्रीमाँ सारदा देवी ने बिहार की यात्रा की थी। मुझे लगने लगता है, मानो मैं श्री श्रीमाँ के साथ-साथ पर्यटन कर रहा था।

प्रथम घटना। सन् १८९० ई० के मार्च का अन्तिम सप्ताह—यानी २५ मार्च। २७ फरवरी, १८७६ ई० को श्रीरामकृष्ण देव की पूजनीय माता का देहावसान हो गया। तब श्रीरामकृष्ण ने श्री श्रीमाँ सारदा देवी को गया धाम जाकर उन वृद्धा माता का पिण्डदान गया जाकर श्रीविष्णुपाद—पद्मों में करने को कहा था। श्री माँ ने उस आदेश का पालन किया था। किन्तु पिण्डदान करना ही माँ के गया आने का एक मात्र कारण नहीं था। उनकी इस लीला का रहस्य कुछ और ही था। 'जगन्माता' सारदा देवी को यह बिहार यात्रा 'संघ माता' बनने के परोक्ष उद्देश्य से हुई थी। श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज ने उक्त घटना का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। अपनी विख्यात पुस्तक "श्री माँ सारदा देवी' में वे लिखते हैं—"सन् १८९० ई० के मार्च के अन्त में श्री माँ बुद्ध गया

गयी थीं। उस दिन एक तरफ वहाँ के मठ का अतुल ऐश्वर्य देख और इसके विपरीत दूसरी तरफ अपने त्यागी पुत्रों के लिए स्थायी आश्रय का अभाव, अन्न-वस्त्र का अवर्णनीय कष्ट तथा साथ ही मठ की परिचालना में अत्यन्त दैहिक कष्ट आदि देख संघ-जननी विचलित हो उठी थीं। संघ को सुव्यवस्थित रूप में देखने के लिए उनके मन में एक करुण प्रार्थना जाग उठी। पीछे उन्होंने कहा था, 'अहा! इसके लिए ठाकुर के सामने कितना रोई हूँ, कितनी प्रार्थना की है तभी तो आज उनकी कृपा से ये मठ-वठ जो कुछ हैं। ठाकुर के देह-त्याग के बाद लड़के संसार त्यागकर कुछ दिन एक जगह ठहरे। इसके बाद सभी स्वाधीन रूप से एक-एक कर इधर-उधर घूमते रहे। उस समय मुझे बड़ा दुःख हुआ। ठाकुर के पास प्रार्थना करने लगी, "ठाकुर, तुम आये, इन कुछ व्यक्तियों के साथ लीला और आनन्द करके चले गये और बस, सब समाप्त हो गया? तो इतना कष्ट करके आने की आवश्यकता ही भला क्या थी? मैंने काशी-वृन्दावन में देखा है, अनेक साधु भीख माँगते और इधर-उधर भटकते फिरते हैं। ऐसे साधुओं की तो कमी नहीं है। तुम्हारे नाम पर अपना सब कुछ त्यागकर मेरे बच्चे थोड़े से अन्न के लिए भटकते फिरेंगे, यह मुझसे देखा नहीं जायगा। मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम्हारे नाम पर जो निकलेंगे, उन्हें साधारण खाने-पहनने का अभाव न हो। वे सभी तुम्हें और तुम्हारे उपदेशों तथा भावों को लेकर एक साथ रहेंगे, और सांसारिक दुःखों से जर्जरित मनुष्य उनके पास आकर तुम्हारी बातें सुनकर शान्ति पायेंगे। इसीलिए तो तुम्हारा यहाँ आना हुआ है। उन्हें इधर-उधर भटकते देख मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है।' इसके बाद नरेन ने धीरे-धीरे यह सब किया।" (पृ० ४०८-९)

यह बिहार की मिट्टी थी जहाँ जगज्जननी माँ सारदा ने अपनी संतानों के लिए, रामकृष्ण संघ के लिए जगत-ज्वाला से दग्ध अखिल मानव-जाति की आत्मिक शान्ति, सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए तथा श्रीरामकृष्णदेव के उपदेशों के विश्व-व्यापी प्रसार के लिए करुणाभिभूत होकर श्रीठाकुर से प्रार्थना की थी। और आन्तरिक प्रार्थना सुनी जाती है। जगदम्बा श्रीमाँ सारदा की प्रार्थना भला क्यों न सुनी जाती? प्रार्थना सुनी गयी और आज रामकृष्ण संघ के माध्यम से लोक मंगल का जो कार्य श्रीरामकृष्ण देव की सर्वस्वत्यागी संतानों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में तीव्रता से किया जा रहा है उसके मूल में गया (बिहार) में की गयी मर्म प्रार्थना ही कुंडलिनी शक्ति की भाँति कार्य कर रही है।

यह अकारण और मात्र संयोग नहीं है कि श्रीरामकृष्णदेव के पिताश्री, उनकी लीला सहधर्मिणी श्रीमाँ सारदा देवी एवं उनके अन्यतम शिष्य स्वामी विवेकानन्द सभी बिहार की इस पावन भूमि गया में आते हैं और वहाँ से एक इतिहास का, एक आध्यात्मिक-चेतना का, एक धर्म-चक्र का प्रवर्त्तन कर विश्व के धर्म-क्षितिज पर एक नयी भोर की किरण बिखेर देते हैं।

श्री माँ गया से इसी यात्रा में बुद्ध गया भी गयीं थीं। स्वामी विवेकानन्द ने भी बुद्ध गया की यात्रा श्रीरामकृष्णदेव के जीवन काल में ही की थी और उसी अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ध्यान किया था जहाँ भगवान बुद्ध ने ध्यानकर बोधिसत्व प्राप्त किया था। श्रीरामकृष्ण के अनुरागी भक्तों के लिए गया तीर्थमणि है, इसलिए नहीं कि वहाँ लाखों लाख हिन्दू प्रतिवर्ष विष्णुपाद के नीचे अपने पितरों को पिण्ड दान देते हैं, इसलिए भी नहीं कि वहाँ बुद्ध ने बोधिसत्व प्राप्त किया था बल्कि इसलिए कि

वह भगवान रामकृष्ण के अविर्भाव का विभाव है, और श्रीमां शारदा देवी, स्वामी विवेकानन्द एवं उनके गुरुभाइयों के पाद-पद्मों से संस्पर्शित हैं।

द्वितीय घटना। श्री माँ की वैद्यनाथ धाम यात्रा। गया यात्रा के क्रम में ही श्रीमां ने श्रीरामकृष्ण के प्रत्यक्ष शिष्य स्वामी अद्वैतानन्दजी के साथ वैद्यनाथ धाम आकर भगवान वैद्यनाथ के भी दर्शन किये। इसी वैद्यनाथ धाम में श्रीरामकृष्ण ने शिव-भाव से जीव सेवा के अपने महामंत्र का सर्वप्रथम व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत किया था। श्रीरामकृष्ण स्वयं शिव थे। श्री माँ की वैद्यनाथ यात्रा से मानो स्वयं शक्ति ने वहाँ पदार्पण किया। श्रीमां श्रीरामकृष्ण देव की शक्ति थीं। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं कहा था--"वह मेरी शक्ति है।" वैद्यनाथ शिव की भूमि पर माँ की इस यात्रा ने श्रीरामकृष्ण की यात्रा को पूर्णता प्रदान कर दी। शिव और शक्ति ने नर देह से वहाँ उपस्थित होकर वैद्यनाथधाम को तीर्थता-प्रदान कर दी।

तीसरा घटना। १८९३-९४ ई० (दिसम्बर-जनवरी)। श्रीरामकृष्ण के अनन्य गृही भक्त बलराम बसु की कन्या श्रीमती भुवनमोहिनी का देहान्त हो जाने पर उनकी पत्नी श्रीरामकृष्ण पत्नीश्रिता श्रीमती कृष्णभाविनी शोक संतप्त होकर रोग से जर्जर हो गयीं। उन्हें जलवायु परिवर्तन के विचार से कोइलवर जाने का निर्णय हुआ। किन्तु वे तभी जाने को राजी थीं जब श्रीमाँ भी उनके साथ जायें। अतएव, भक्तों के अनुरोध पर करुणामयी माँ जनवरी, १८९४ माघ मास, में कृष्णभाविनी, गोलाप-माँ, स्वामी सारदानन्द, स्वामी त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी योगानन्द तथा उनके पिता श्री नवीनचंद्र चौधुरी के साथ कोइलवर आयीं। कोइलवर बिहार राज्य के अन्तर्गत आरा (शाहाबाद) से आठ मील पूर्व में स्थित मनोरम स्थान है। वहाँ श्री माँ सारदा देवी दो मास तक रहीं। वहाँ का वर्णन करते हुए स्वामी गम्भीरानन्दजी ने लिखा है—"श्रीमाँ ने वहाँ देखा कि जंगली हरिण दल बाँधकर त्रिभुजाकार चलते हैं और विपत्ति का आभास पाते ही मानों उड़ते हुए भागते हैं और निमेषमात्र में गायब हो जाते हैं। और देखा कि छोटे छोटे खजूर के पेड़ों में लटकाये हुए बरतनों से सियाल कहीं रस न पी जाय, इस डर से लोग गड्ढे खादकर सारी रात वहीं बैठकर पहरा देते हैं।" श्रीमाँ इन दृश्यों को बाल सुलभ भाव से देखकर मुग्ध हो जाती थीं।

श्री माँ ने प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न कोइलवर की भूमि पर दो महीनों तक रहकर उस भूमि को धन्यता प्रदान की। मुझे स्पष्ट दीखता है कभी वहां श्री माँ की स्मृति में एक सारदा मठ की स्थापना होगी और स्थानीय नारियों के चहुमुखी विकास के कार्य तीव्रता से सम्पन्न होंगे। बिहार वासियों का यह पावन कर्तव्य बनता है कि गया, देवघर और कोइलवर में श्री माँ की स्मृति में आश्रम का निर्माण कर श्रीरामकृष्ण-सारदा के भावादर्शों का प्रचार प्रसार करने की दिशा में तत्पर हों।

काली-पूजा ५ नवम्बर के अवसर पर

माँ काली

लेखक — ब्रह्मचारी रघोत्तम
रामकृष्ण मिशन, अगांग
(अरुणाचल प्रदेश)

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥

"इस प्रकार जब-जब दानवों के प्रादुर्भाव से विघ्न उपस्थित होंगे, मैं तब-तब अवतीर्ण होकर शत्रुओं का विनाश करूँगी (श्रीचण्डी ११/५४-५५)

महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती, ये तीनों नाम जगन्नियन्ता परमात्मा की चितिशक्ति के हैं। शास्त्रकारों का दृढ़ विश्वास है कि परमात्मा को स्वरचित आलौकिक योगमाया का आश्रय लेकर पुरुष या स्त्रीरूप से अवतीर्ण होना पड़ता है। जब वे पुरुषरूप में अवतार लेते हैं, तब जगत् उनकी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि नामों से स्तुति करता है और जब वे स्त्रीरूप से जगत् में अवतीर्ण होते हैं, तब उन्हें महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती कहते हैं। शक्ति-संयुक्त श्रीभगवान ही युगधर्म-प्रवर्तन में समर्थ हैं, अन्यथा निर्गुण ब्रह्म का जगत् के व्यापारों में क्रियाशील होना नितान्त असम्भव है। इस प्रकार ईश्वर आराधिता शक्ति हर मानव समाज के पुनरुत्थान का सूत्रपात करती हैं।

नरावतारों के सदृश चितिशक्ति भी रज, सत्व और तम आदि गुणों की अधिकता के अनुसार वेश धारण कर तदनुरूप कार्य करती है। इनमें तमः प्रधान चितिशक्ति रुद्ररुप को महाकाली कहते हैं, जो प्रधानतया दुष्टों का संहार करती हैं। दुर्गा सप्तशती में चितिशक्ति के इन तीनों स्वरूपों की कथा बड़ी मनोरंजक है।

पूर्वकाल में शुम्भ तथा निशुम्भ नाम के दो राक्षसों ने अपने गर्व तथा बल के प्रभाव से शचीपति-देवराज इन्द्र तथा अन्य देवताओं के त्रिलोक एवं यज्ञों के भाग का हरण कर लिया। तदनन्तर उन असुरों से विताड़ित, राज्य-भ्रष्ट एवं पराजित देवगण पर्वतराज हिमालय पर जाकर विष्णुमाया भगवती की अनेक विभूतियों के वर्णन के द्वारा स्तुति करने लगे। फलस्वरूप देवी पार्वती प्रकट हुईं। गौरी देह से कौशिकी का प्राकट्य हुआ और उनके अलग होते ही अम्बा पार्वती का स्वरूप काला हो गया, वे ही 'काली' नाम से विख्यात हुई—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् सापि पार्वती,
कालि केति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥
(दुर्गासप्तशती ५/२२)

वास्तव में काली को ही नीलरूपा होने से 'तारा' भी कहा गया है। उन्हें नील सरस्वती, उग्रतारिणी तथा उग्रतारा आदि नामों से भी जाना जाता है।

तो, आइए हम कथा को आगे बढ़ाते हैं। प्रकट होने पर इन देवी को शुम्भ निशुम्भ दैत्यों के चण्ड और मुण्ड नामक भृत्यों ने देखा और उनपर मुग्ध हो अपने प्रभु को इन देवी को ग्रहण करने के लिए कहा। शुम्भ राक्षस ने अपने एक दूत द्वारा प्रणय-प्रस्ताव भेजा। परन्तु देवी बोलीं कि "मेरी प्रतिज्ञा है कि मुझे जो संग्राम में पराजित करेगा, वही मेरा पति होगा।" क्रुद्ध हो शुम्भ-निशुम्भ अपनी सम्पूर्ण सेना सहित देवी पर आक्रमण कर बैठे। इसके पूर्व देवी कालिका ने चण्ड और मुण्ड को मारकर उनके सिर देवी चण्डिका को हँस कर भेंट स्वरूप दिए थे एवं शुम्भ-निशुम्भ को उन्हें ही मारने को कहा था। सम्पूर्ण सेना को आते देख देवी चण्डिका के शरीर से ब्रह्मा, विष्णु महेश, कार्तिके

इन्द्र प्रभृति देवताओं की शक्तियाँ प्रकट हो गयीं एवं कई शिवाएँ भी आ उपस्थित हुयीं। घमासान युद्ध छिड़ गया। शुम्भ-निशुम्भ अपनी बहुसंख्य आसुरी सेना सहित मारे गये परन्तु रक्तबीज नामक राक्षस बच रहा। उसके शरीर से रक्त की जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरती थीं उतने ही उसी के सदृश अन्य असुर उत्पन्न हो जाते थे। यह देख देवी चण्डिका ने कालीजी से कहा कि तुम इस राक्षस के शरीर से निकले समस्त रक्त का अपना मुख फैलाकर पान करो। क्षीणरक्त होने पर यह मारा जाएगा। तत्पश्चात् देवी चण्डिका ने तीखे शूल से प्रहार किया एवं कालीजी उसका समस्त रक्त पी गयीं। दैत्य मौत के घाट उतर गया। समस्त देवगण हर्षित हो जयध्वनि करने लगे।

कथा पौराणिक होने पर भी उसमें आध्यात्मिक तथ्य निहित है। यह रक्तबीज काम एवं भगोलिप्सा का प्रतीक है। इन्द्रियों में जिह्वा एवं उपस्थ प्रबल हैं। इन दोनों में, काम की सर्वांगीण चरितार्थता में उपस्थ इन्द्रिय ही साधक है। किन्तु जिह्वा या रसनेन्द्रिय के द्वारा ही उपस्थ की परिपुष्टि होती है। अतः काम को दमन करने के लिए जिह्वा का संयमन मुख्य है। रसनेन्द्रिय के नियंत्रण से उपस्थ भी नियन्त्रि होता है। इसीलिए विशेष यत्न तथा इन्द्रिय संयमन के अभ्यास से काम का दमन करना चाहिए। उपलक्षण स्वरूप जिह्वा की संयमन प्रक्रिया से रक्त बीज (अर्थात् काम) का वध काली मूर्ति में प्रदर्शित किया गया है। प्रतिमा में जिह्वा को तालु कुहर में प्रविष्ट हुआ दिखाया नहीं जा सकता। इसी लिए कालीजी का जिह्वा को प्रलम्बित कर दातों से दबाते हुए दिखाया गया है। दैत्य के वध से अभिप्राय है 'अहन्ता' का विनाश। उस अहंकार के नष्ट होने पर साधक को अखिल जगत् प्रसन्न एवं प्रशान्त भासित होने लग जाता है :—

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि।
जगत् स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाऽभवन्तभः॥

माँ काली का स्वरूप भी बड़ा निराला है। गहरे नीले रंग की होने से कृष्णवर्ण दीख पड़ती हैं। इनकी केशराशि मेघ-सी काली है, जिसमें चन्द्रछटा अनोखी है। ये दिगम्बरी, चतुर्भुजा हैं। बाएँ हाथों में से एक में रक्त से सना खड्ग है एवं अन्य में राक्षस का छिन्न-मुण्ड है। दोनों दाहिने हाथ वराभय एवं मुक्तिदायक मुद्रा में उठे हैं। त्रिनेत्री देवी की आँखें मानो कोप की ज्वाला ही हैं। वदन में इतना क्रोध होते हुए भी देवी कालिका के मन में जीवों पर अपार करुणा है।

इतना विकराल रूप देखकर भी, जिसमें देवी ने गले में मुण्डमाला एवं खण्डित हाथों को कमरबन्द के रूप में कमर में लपेटा है—भक्त कमलाकान्त को बड़े मजे की जिज्ञासा है जिसे उन्होंने भजन की एक पंक्ति में दर्शाया है—

"ब्रह्माण्ड छिलो ना माँ जखन, मुण्ड़माल कोथाय पेलि।" अर्थात् माँ, जब तू ही जगत् की सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयकारिणी है, तू ही आद्याशक्ति है एवं जब ब्रह्माण्ड का पहले-पहल अस्तित्त्व ही नहीं था तो माँ, तूने ये मुण्डमाला जो गले में धारण कर रखी है, भला, वह कहाँ से पायी ?

श्रेष्ठ काली भक्त रामप्रसाद मानो देवी पर ही कटाक्ष करने से नहीं चूकता—

"कोन हिसाबे हरहृदे दाँड़ायेछो माँ पद दिये।
साध कोरे जिब् बाड़ायेछो जेनो कोतो न्याका मेये।
जेनेछि जेनेछि तारा, तारा कि तोर एमनि धारा।
तोर माँ कि तोर बापेर बुके दाँड़ाए छिलो एमनि कोरे॥"

अर्थात् हे माँ कालिके, किस हिसाब् से तुम श्रीशिवजी के हृदय पर पैर रखकर खड़ी हो ? तुमने इच्छापूर्वक अपनी जीभ निकाल रखी है, मानो कितनी भोली-भाली लड़की हो। तुम यह तो बतलाओ कि क्या तुम्हारी माँ भी तुम्हारे पिताजी के वक्षः स्थल पर इसी ढंग से खड़ी हुई थी ?

ये दोनों भक्त कभी-कभी तो कालीजी को गाली

देने से भी नहीं चूकते थे। परन्तु यही भक्ति की पराकाष्ठा है। जहाँ भक्त अपने प्रियतम से ऐसा अपनत्व का भाव उत्पन्न करने में समर्थ हो जाता है, जबकि वह अपने प्रियतम से कभी तो एकत्व का बोध करता है, कभी रूठ जाता है एवम् कभी नाराज होने पर भला-बुरा भी कह बैठता है। नन्हा बच्चा अपनी माता की गोद में बैठा रहता है, परन्तु माता के डाँटने से माँ को ही नाराज होकर मारने लगता है परन्तु इस भाव में कितनी निर्मलता होती है! जरा सोचकर देखिए।

रामप्रसाद कमलाकान्त एवं वामाखेपा आदि भक्त माँ काली के साकार एवं निराकार रूप से पूर्णतया परिचित थे। तभी तो निर्वाण-विषयक अपनी कविता में काली-भक्त रामप्रसाद लिखता है—

"चिनी होते चाई ना माँ, चिनी खेते चाई।"

'तात्पर्य यह कि स्वयं चीनी या शक्कर होकर निराकार ब्रह्मरूपी जल में घुलना न चाहकर भक्त शक्कर का आस्वादन (ब्रह्मानन्द) लेना चाहता है।' इन श्रेष्ठ साधकों ने काली का अद्भुत दर्शन-लाभ किया था।

इसी बात को साक्षी रखकर जब श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में माँ काली के पुजारी थे तब अपने साधना-काल में अत्यन्त व्याकुल हो रो-रोकर देवी काली से कहा करते थे—'माँ, तूने रामप्रसाद, कमलाकान्त आदि भक्तों को दर्शन दिया था, तो फिर मुझे दर्शन क्यों नहीं देती? क्या तू सुनती नहीं?" श्रीरामकृष्ण ने भी अन्ततः माता काली का दिव्य दर्शन किया था। स्वयं श्रीरामकृष्ण के शब्दों में उनके उक्त दर्शन की बात स्पष्ट हो जाती है—

"माँ का दर्शन न मिलने से उस समय मेरे हृदय में असह्य यातना थी, जलरहित करने के लिए लोग जिस प्रकार अंगोछे को निचोड़ते हैं, मेरे हृदय को भी कोई ऐसा कर रहा है, अनुभव होता था। माँ का दर्शन सम्भवतः मुझे कभी भी प्राप्त नहीं होगा, यह सोचकर वेदना से तड़पने लगा। व्याकुल होकर यही सोचने लगा कि इस जीवन में क्या लाभ है? उस समय मेरी दृष्टि माँ के मन्दिर में रखी हुई तलवार पर सहसा जा पड़ी। तत्काल ही जीवन को समाप्त करने की भावना से उन्मत्त की तरह दौड़ता हुआ वहाँ जाकर मैं उसे पकड़ ही रहा था कि उसी समय सहसा माँ का अद्भुत दर्शन मिला था तथा बेसुध होकर मैं गिर पड़ा। तदनन्तर क्या हुआ, किस तरह वह तथा दूसरे दिन व्यतीत हुए, मुझे इसका कुछ भी पता नहीं है। किन्तु मेरे हृदय में एक अपूर्व घनीभूत आनन्द का स्रोत प्रवाहित हो रहा था और मैंने माँ के साक्षात् प्रकाश की उपलब्धि की थी।"

परवर्ती काल में श्रीरामकृष्ण इन्हीं माँ काली पर एक छोटे शिशु के समान अवलम्बित थे एवं हरएक बात में अपनी इस कृपामयी जननी का ही मुँह निहारा करते थे। उनकी यह माँ भी सदा ही इस प्यारे बेटे का मार्ग-दर्शन किया करती थी। वह एक अपूर्व काल बीत गया है जो इन दृष्टान्तों से भरा-पड़ा है।

उनका सबकुछ माँ का ही था। वे स्वयं के लिए कभी 'मैं' शब्द का प्रयोग नहीं किया करते थे क्योंकि वह तो कब का मर चुका था। प्रयोजन पड़ने पर केवल अपने शरीर की ओर इंगित कर देते थे। इस तरह अहंकार का सम्पूर्ण विनाश होने पर कहीं सत्य की उपलब्धि सम्भव है। धन्य है माँ काली का यह लाल, जिसने अपने जीवन द्वारा असंख्य प्राणियों के मन में आशा की एक किरण जला दी है कि देखो, माँ हैं और उन करुणामयी जननी का दर्शन भी किया जा सकता है। आवश्यक है एक शिशु की सरलता एवं हृदय की निर्मलता।

प्रश्न उठ सकता है कि इस प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में इस आद्याशक्ति माँ काली का क्या प्रयोजन है? इन पौराणिक कथाओं एवं इन देव-देवियों की वर्तमान युग में भला क्या सार्थकता हो सकती है? उत्तर यह है कि प्राचीन काल में देव-मनुष्यों को पीड़ा पहुँचाने दानवों का संहार करना एक अनिवार्य रूप से प्रयोजनीय बात थी। परन्तु असुरों की ताण्डव-लीला केवल बहिर्जगत् तक ही

सीमित नहीं रहती है, अन्तर्जगत् में सुवृत्तियों एवं कुवृत्तियों के बीच भी निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। उपनिषदों में उसे भी देवासुर-संग्राम कहा है।

विश्वास के स्थलों में संशय एवं आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति उदासीन भाव, हमारे युग के ज्वलन्त दोष हैं। आस्तिक-बुद्धि, परलोक-चिन्तन, ध्यान-निष्ठा प्रभृति सद्गुणों को निर्मूल करने हेतु वर्तमान युग में अश्रद्धा, जड़प्रियता, भोगपरायणता आदि आसुरी वृत्तियों ने जो लड़ाई ठानी है और जिसके फलस्वरूप धर्म की ग्लानि, अधर्म की वृद्धि और ईर्ष्या, द्वेष, काम आदि के प्राबल्य से लोक-नाशक युद्ध-विग्रह संघटित हो रहे हैं, वही इस युग का देवासुर-संग्राम है।

वर्तमान काल में मनोराज्य का यह संग्राम पौराणिक देवासुर-संग्राम की अपेक्षा अधिक भयावह है। अतीत का संघर्ष प्रायः स्थूल-जगत् की सीमा का अतिक्रमण नहीं कर पाता था, परन्तु आधुनिक द्वन्द्व अन्तर्जगत् से उत्पन्न हो तथा नित्य के जीवन में प्रसारित हो मानवता पर ही कुठाराघात करने चला है।

अतएव वर्तमान युग में शक्ति की क्रिया और असुर-संहार प्रधानतः मानसिक क्षेत्र में होना चाहिए। आधुनिक जगत् के लिए नैतिक उन्नति एवं आध्यात्मिक अनुभूति सबसे अधिक वाञ्छनीय है। अन्तर्जगत् में एक बार भक्ति, विश्वास और पवित्रता के पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाने पर बाह्य अवस्था स्वतः ही उसी के अनुसार प्रतिष्ठित हो जाएगी। इसीलिए इस युग में शक्ति के अवतार अन्तः शत्रुओं की विजय में ही संलग्न हैं।

आइए, माँ काली से भक्ति परिपूर्ण हृदय से प्रार्थना करें कि वे हमारे भीतर के काम-क्रोधादि असुरों का संहार कर हृदय में भक्ति की निर्मल गंगा प्रवाहित कर हमारा जीवन धन्य कर दें। परन्तु सावधान! माँ काली की कृपा के ढंग निराले हैं। माँ काली के विषय में स्वामी विवेकानन्दजी कहते थे "वे ही काल हैं, वे ही परिवर्तन हैं और वे ही अनन्त शक्ति हैं। यह सोचना भूल है कि सभी मनुष्यों के लिए सुख ही प्रेरणा है। उतनी ही बड़ी संख्या उनकी भी है जो दुःख की खोज करने के लिए ही जन्म लेते हैं। दुःख में भी आनन्द की उपलब्धि की जा सकती है। आओ, हम लोग भी 'कराल' के निमित्त ही 'कराल' की उपासना करें। मधुर एवं आनन्द में माँ को देखने के साथ ही उन्हें बुराई, आतंक, दुःख एवं विनाश के भीतर भी स्वाभाविक रूप से पहचानना सीखो।

"भयंकरा की उपासना के द्वारा भय से मुक्ति तथा अमृतत्व की प्राप्ति होती है। मृत्यु का ध्यान करो। भीमा की, भयंकरा की पूजा किए जाओ! माँ स्वयं ही ब्रह्म हैं। उनका अभिशाप भी वरदान है। हृदय को श्मशान बना लो और उसमें अहंकार, स्वार्थ एवं वासनाओं को जलाकर राख कर दो। तभी और केवल तभी माँ का आगमन होगा।" उन्होंने अपनी कविता 'माँ काली' (मूल अंग्रेजी-काली द मदर) में ऐसे ही भाव व्यक्त किए हैं—

"नाम है आतंक तेरा,
मृत्यु तेरे श्वास में है,
चरण उठकर सर्वदा को,
विश्व एक मिटा रहा है,
समय तू है, सर्वनाशिनि,
आ, जननि, आ, जननि, आ, आ!
साहसी, जो चाहता है,
दुःख, मिल जाना मरण से,
नाश की गति नाचता है,
माँ उसी के पास आई।"

अवतरण तिथि २० दिसम्बर के अवसर पर

नारी आदर्श की जीवन्त प्रतिमा श्री माँ सारदा देवी

स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

प्राचीन काल से भारतीय नारी का आदर्श मातृत्व की परिपूर्णता रही है। हिन्दू धर्म के अनुसार ईश्वर ही इस जीव जगत् के निमित्त और उपादान कारण हैं। वे ही अपनी दैवी शक्ति, माया, के माध्यम से इस जगत की सृष्टि करते हैं तथा ओत प्रोत रूप में व्याप्त हैं। इस तरह ईश्वर इस जगत के माता और पिता दोनों ही है। ईश्वरीय शक्ति, माया, ईश्वर से भिन्न नहीं, जिस प्रकार दाहिका शक्ति को अग्नि से भिन्न नहीं किया जा सकता। इस ईश्वरीय शक्ति को ही हम जगदम्बा दुर्गा काली आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं। इस दैवी शक्ति और जागतिक माता में सादृश्य है। जिस प्रकार यह शक्ति विश्व ब्राह्माण्ड का सृजन और पालन करती है, उसी प्रकार जागतिक माता भी सन्तान को गर्भ में धारण कर उपयुक्त समय में उसे जन्म देती है तथा उसका पालन पोषण करती है। अतः नारी भौतिक जगत में इस दैवी शक्ति का ही प्रतीक है और इसलिए वह सबकी श्रद्धा-भाजन है। ईश्वर का प्रेम सबके प्रति निःस्वार्थपूर्ण, निष्कपट और अहैतुकी है। संसार में इस प्रेम की निकटतम तुलना यदि किसी से की जा सकती है तो वह है माता के प्रेम से अन्य प्रेम प्रतिदान चाहता है। केवल माँ का ही प्रेम ऐसा है जिसमें स्वार्थ का लेश तक नहीं। यह ऐसा प्रेम है जो सन्तान के लिए सब प्रकार के सुखों का त्याग करने के लिए तत्पर है, सब प्रकार के कष्टों को झेलने के लिए प्रस्तुत है, यहाँ तक कि नरक-यातना की भी परवाह नहीं करता।

भारतीय नारी इसी महिमा-मण्डित मातृत्व की वाहना युगों से करती आयी है। पश्चिम में पत्नी का सर्वोच्च सम्मान किया जाता हैं, जबकि भारत में माता का।

भारत में माता का नाम निस्वार्थता, त्याग, क्षमा, भाव माधुर्य और कोमलता का पर्यायवाची है। सन्तान के कल्याण के लिए यहाँ माता कितना अधिक कष्ट और त्याग सहन नहीं करती! जब बच्चा गर्भ में रहता है, तो गर्भवती माँ मन्दिर में जाती है, धर्म ग्रंथों का पठन करती है, सत्संग करती है, मन को अशुभ विचारों से अलग रखती है, ताकि आनेवाला शिशु शुभ संस्कार लेकर आये। भारतीय नारी अपने अधिकार और सुविधा की अपेक्षा अपने कर्त्तव्य कर्म को अधिक महत्व देती है। एक बाहरी व्यक्ति को यहाँ की नारी निष्क्रीय प्रतीत हो सकती है। ऐसा लग सकता है कि वह स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर पा रही है। पर उसकी स्वतंत्रता सम्बन्धी अपनी एक धारणा है। वह अपने को स्वतंत्र तब समझती है, जब वह बिना किसी हस्तक्षेप के अपने घर का कामकाज कर सके, अपने मानदण्ड और हैसियत के अनुसार अपने बच्चों का पालन पोषण कर सके, तथा अपनी आध्यात्मिक साधना कर सके। भारतीय नारी शान्त होती है, पर कमजोर नहीं

उसकी गंभीर शान्ति और आत्मसंयम के पीछे ऐसी अद्भुत शक्ति है जिसके सामने बड़ी-से-बड़ी ताकत भी नतमस्तक हो जाती है। समय-समय पर भारतीय नारी ने अपने को आध्यात्मिक सन्त, मनीषी, राजनीतिज्ञ, योद्धा, तथा कुशल साम्राज्ञी के रूप में प्रकट किया है। प्राचीन काल की मैत्रेयी, गार्गी, सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि से लेकर वर्त्तमान काल की मीरा, अहिल्या, लक्ष्मी-बाई, अन्दल आदि इसके कुछ ज्वज्ज्वल्यमान उदाहरण हैं।

श्री रामकृष्ण देव ने श्री माँ सारदा देवी को नारी के आदर्श के रूप में गढ़ा था। समस्त नारी जाति के प्रति उनका मातृभाव विश्व के इतिहास में एक अप्रतिम वस्तु है। यद्यपि वे काम कांचन-त्यागी ईश्वर-प्रेम में मतवाले वीतराग संन्यासी थे, तथापि उन्होंने विवाह किया था तथा अन्त तक पत्नी को अपने साथ रखा था। विश्व को यह दिखलाने के लिए कि औसत व्यक्ति के लिए विवाह भोग-वासना की वस्तु नहीं वरन आध्यात्मिक साधना की वस्तु है, जिससे व्यक्ति आत्म संयम की शिक्षा ग्रहण कर सके तथा शनैः शनैः सच्चिदानन्द की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सके। श्रीरामकृष्ण देव का अपनी पत्नी से सम्बन्ध समस्त प्रकार की सांसारिकता से सर्वथा रहित था। किन्तु पत्नी को लोक व्यवहार तथा सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने की सारी शिक्षा उन्होंने प्रदान की। कामारपुकुर और दक्षिणेश्वर के प्रारम्भिक दिनों में उन्होंने पत्नी को घर के समस्त कामकाज के बारे में प्रशिक्षित किया था। यहाँ तक कि उन्होंने लालटेन में बत्ती कैसे लगानी, तरकारी कैसे काटनी, पान के बीड़े कैसे लगाने, आदि सामान्य चीजों की जानकारी तक दी थी। फिर लोक-व्यवहार की शिक्षा भी दी थी कि घर के विभिन्न सम्बन्धी किस स्वभाव के हैं तथा उनसे कैसा व्यवहार करना चाहिए तथा बाहर के लोगों से कैसा वर्ताव करना चाहिए। साथ ही साथ भगवन्नाम संकीर्तन की, ध्यान और भजन की, यहाँ तक कि ब्रह्म ज्ञान की भी शिक्षा प्रदान की थी। पर इन सबके साथ नारी सुलभ स्वाभाविक लज्जा को सतत बनाये रखने के लिए भी प्रेरित किया था। एक बार जब श्री माँ ने गौरदासी और लक्ष्मी देवी जैसी ईश्वर कीर्तन में तन्मयता और भाव प्रवणता की प्रार्थना की थी, तो श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें इसके लिए प्रोत्साहित नहीं किया। यह कहकर कि यह उनकी लज्जाशीलता के अनुरूप न होगा। श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें पत्नी के समस्त अधिकार दिये थे। यहाँ तक कि अपनी ही शैय्या पर सोने का अधिकार भी दिया था और एक दिन उनकी परीक्षा लेने की दृष्टि से उनसे अचानक पूछ लिया, "क्या तुम मुझे संसार में खींचने के लिए आयी है? श्री माँ ने तत्काल उत्तर दिया "मैं तुम्हें संसार में क्यों खींचने चली? मैं तो तुम्हारे आदर्श की प्राप्ति में सहायक होने आयी हूँ।" एक दूसरे दिन श्री माँ भी रात में उनके पैर दबाते-दबाते पूछ उठी, अच्छा, तुम मुझे किस रूप में सोचते हो?" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया, "जो माँ (काली) मन्दिर में विराजमान हैं, उन्होंने ही इस शरीर को उत्पन्न किया है और वे अभी नौबतखाने* में हैं, फिर वे ही इस समय मेरे पैर दबा रही हैं। सचमुच मैं तुम्हें सदा साक्षात् आनन्दमयी के रूप में देखता हूँ।"

श्रीरामकृष्ण, श्री माँ की आत्यन्तिक पवित्रता देख अत्यन्त प्रभावित हुए थे। उन्होंने ५ जून सन् १८७२ को जगन्माता के षोड़शी भाव से श्री माँ की पूजा की तथा अपनी समस्त आध्यात्मिक उपलब्धियों को उनके चरणों में समर्पित कर दिया। और इस प्रकार उन्होंने सारे विश्व को दिखा दिया कि सांसारिक सुख भोग तथा ईश्वरानन्द की अनुभूति दोनों एक साथ नहीं हो सकती। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिए दैहिक सुख का परित्याग करना ही होगा।

समस्त दैहिक और भौतिक सम्बन्धों से रहित रहने पर भी श्रीरामकृष्ण का श्री माँ के प्रति व्यवहार अत्यन्त कोमल और श्रद्धायुक्त था। इसका उल्लेख करते हुए श्री माँ ने जब वे अपने एक निकटतम सम्बन्धी द्वारा अपमानित हुई थीं, कहा था, "मैं एक ऐसे पति को ब्याही

*श्रीरामकृष्ण देव की गर्भधारिणी माता चन्द्रामणि देवी उन दिनों नौबतखाने में रहती थीं।

गयी जिसने मुझे कभी एक कड़ी बात भी नहीं सुनाई, कभी मेरे भावों को दुख नहीं पहुंचाया, यहाँ तक कि मुझे फूल से भी नहीं मारा।" श्रीरामकृष्ण श्री माँ की महानता से परिचित थे। उन्होंने कहा था, "वह सारदा है, सरस्वती है, वह संसार को ज्ञान देने आई है। इस बार वह अपना रूप ढंककर आई है ताकि सांसारिक व्यक्ति उसे अपनी कलुषित दृष्टि से देखकर पाप के भागी न बनें।" फिर उन्होंने कहा था, "वह ज्ञान दायिनी है, अलभ्य गुणों से युक्त है। क्या वह ऐसी-वैसी है? वह मेरी शक्ति है।" एक बार मजाक में उन्होंने कहा, "वह राख में ढंकी बिल्ली के समान है" जिस प्रकार राख में लिपटी बिल्ली अपना असली रंग छुपाये रखती है, श्री माँ भी उसी प्रकार लज्जा करुणा, दीनता, तथा अनाधुनिकता की आड़ में अपना असली स्वरूप छिपाये रखतीं। तभी तो स्वामी प्रेमानन्दजी ने कहा था, "श्री माँ को भला कौन पहचान सकता है? वे शक्ति स्वरूपिणी हैं न, इसीलिए उनमें छिपाने की शक्ति भी असीम है। उनमें ऐश्वर्य का तनिक भी प्रकाश नहीं। ठाकुर+ में तो विद्या का ऐश्वर्य था, पर माँ में तो उसका लेशमात्र भी नहीं है।"

श्रीरामकृष्णदेव जानते थे कि उनके पीछे सारा आध्यात्मिक कार्य श्री माँ को जारी रखना है, और इसके अनुरूप उन्होंने श्री माँ को तैयार भी किया था।

बहुत दिनों बाद एक शिष्य ने श्री माँ से पूछा था, "माँ, दूसरे अवतारों ने अपनी शक्तियों के तिरोधान के पश्चात् अपनी देह त्यागी थी, पर इस बार ठाकुर तुम्हें छोड़ आगे क्यों चले गये?" श्री माँ ने उत्तर दिया, "बेटा तुम तो जानते हो, ठाकुर संसार में सबको मातृवत् देखते थे। वे मुझे सबके सामने इस मातृत्व भाव के प्रकाश के लिए छोड़ गये।"

और सत्य ही श्री माँ ने इस अपूर्व मातृत्व भाव को सर्वदा प्रकट किया। एक दिन की बात है—श्री माँ रात में ठाकुर का भोजन ले उनके कमरे के सामने के बरामदे में पहुँची ही थीं, कि एक महिला भक्त ने अचानक भोजन का थाल उनके हाथ से लेते हुए कहा, "माँ मुझे यह दे दो। मैं इसे ले जाती हूँ।" और वह महिला ठाकुर के सामने वह थाल रखकर चली गयी। ठाकुर भोजन के लिए बैठे। श्री माँ भी उनके पास बैठीं। पर ठाकुर भोजन का स्पर्श तक नहीं कर सके। श्री माँ की ओर देखते हुए वे बोले, "यह तुमने क्या किया? क्या तुम नहीं जानती, वह चरित्रहीन है? उसके द्वारा अपवित्र किया भोजन मैं कैसे खा सकता हूँ?" श्री माँ ने कहा, "मैं सब जानती हूँ। पर आज यह खा लो।" ठाकुर फिर भी उसका स्पर्श नहीं कर पाये। पर श्री माँ की विनती सुनकर बोले, "अच्छा वचन दो, इसके बाद तुम कभी किसी दूसरे के हाथ खाना नहीं भेजोगी।" हाथ जोड़कर श्री माँ ने उत्तर दिया, "यह मैं नहीं कर सकती, ठाकुर! मैं अवश्य तुम्हारा खाना लेकर आऊँगी, पर यदि कोई माँ कहकर प्रार्थना करे तो मैं अपने को रोक नहीं पाऊँगी। इसके बावजूद तुम केवल मेरे ही ठाकुर नहीं, तुम तो सभी के लिए हो।" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण प्रसन्न ही हुए और उन्होंने खाना आरम्भ किया।

श्री माँ में मातृत्व की यह भावना केवल अपने शिष्यों और भक्तों तक ही सीमित नहीं थी; किन्तु वह सभी को अपनी ममतामयी बाहों में समेटे हुए थीं। ब्रह्मचारी रासबिहारी ने एक दिन श्री माँ से पूछा, "क्या तुम सबकी माँ हो? श्री माँ ने कहा, "हाँ" "क्या, यहाँ तक की सभी तुच्छ जीवों की भी? प्रश्नकर्त्ता ने पूछा! श्रीमाँ ने पुनः कहा, "हाँ, सबकी"। एक दिन उनकी भतीजी नलिनी दीदी उन्हें भक्तों का जूठन साफ करते हुए देख चीत्कार कर उठी, "अरी माँ, देखो तो यह गैरजात के लोगों का जूठन उठा रही है!" यह सुनकर श्री माँ ने कहा, "यदि वे गैरजाति के हैं तो क्या हुआ? वे सब मेरी सन्तान हैं"। उनका प्रेम सभी के लिए समान था। धनी, गरीब, ऊँच तथा नीच

+ श्रीरामकृष्णदेव शिष्यों तथा भक्तों के बीच ठाकुर के नाम से सम्बोधित किये जाते हैं।

सभी उनके स्नेह के पात्र थे। एक धनी महिला ने एक बार धमकी देते हुए कहा कि जब तक अमुक दुश्चरित्र व्यक्ति को माँ के पास दर्शन हेतु आने से नहीं रोका जायगा, वह माँ के पास नहीं आयेगी। यह सुन श्री माँ ने कहा, "वह सत् की माँ है और असत् की भी माँ है।" जब एक पतित महिला ग्लानि और पश्चाताप की आग में जलती उनके दरवाजे के सामने बड़ी भय से काँप रही थी, तो श्री माँ ने उसे अपनी ममतामयी बाहों में समेट अपने पवित्र स्पर्श से उसके सारे दुख दूर कर दिये थे। जब एक भक्त ने देश-प्रेम के जोश में विदेशी वस्त्र खरीदने से इंकार किया था, तब विश्व-जननी का स्वर फूट उठा था : "आखिर वे (पाश्चात्य वासी) भी तो मेरी सन्तान हैं। मैं उन्हें कैसे त्याग सकती हूँ।" बहुत कम लोग उस दिन उनके विश्व-प्रेम को समझ पाये थे। सच है, जो समस्त विश्व की जननी है, उन्हें एक देश-विशेष के प्रति आबद्ध करके कैसे रखा जा सकता है! कुख्यात डाकू अमजद उनके लिए वैसा ही बेटा था जैसा वे स्वामी सारदानन्दजी को मानती थीं।

पति के प्रति उनकी कैसी एकान्तिक निष्ठा थी! मन-प्राण देकर उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव की सेवा की। यह सेवा ही उनके जीवन का सर्वस्व थी। यह किसी कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित नहीं थी। किन्तु, यह ठाकुर के प्रति अटूट प्रेम और श्रद्धा के परिणाम स्वरूप थी। यह केवल उनकी बाह्य सेवा तक ही सीमित नहीं थी; किन्तु वे श्रीरामकृष्ण की जीवनधारा के साथ एकाकार हो गयी थीं। स्वामी अभेदानन्दजी ने उनके बारे में सत्य ही लिखा है—

> रामकृष्ण गत प्राणां तन्नामश्रवणप्रियां।
> तद्भावरंजिताकारां प्रणमामि मुहुर्मुहुः॥

जिनका मन श्रीरामकृष्ण में समाहित है, जो यह नाम सुनकर प्रसन्न होती है, तथा जो श्रीरामकृष्णदेव की भावराशि से तदाकारित हैं उन्हें बारम्बार प्रणाम है!

श्री रामकृष्ण के तिरोधान के पश्चात् भी श्री माँ का जीवन उनके प्रति सतत् समर्पण का जीवन था। कठोर त्याग और तपस्या का जीवन बिताते हुए वे सदैव ठाकुर के आदर्श को आगे बढ़ाते रहीं। वे अधिक समय अपने पैतृक गृह जयरामवाटी में बिताती। परिवार में सबसे बड़ी होने के कारण छोटे भाइयों तथा वृद्ध माता का भार उनके ऊपर आ पड़ा। उनके भाई घोर संसारी थे तथा उनके कारण उन्हें जीवन भर दुख उठाना पड़ा। इनके अतिरिक्त उनकी भतीजी राधू और उसकी पगली माँ भी सतत् उनकी चिन्ता का कारण रहीं। पर वे शान्त भाव से सब सहती गयीं और उनके सांसारिक सुख सुविधा का प्रयास कर रहीं।

यही नहीं, ममत्वपूर्ण प्रेम उनके आध्यात्मिक कार्यक्षेत्र में भी पूर्णरूपेण परिलक्षित हुआ था। काशीपुर में श्रीरामकृष्णदेव ने दुखभरे शब्दों में कहा था, "क्या तुम कुछ न करोगी? क्या इसे ही (अपने शरीर को इंगित करते हुए) अकेले सब कुछ करना होगा?" श्री माँ ने तब कहा था, 'मैं तो ठहरी स्त्री की जात, मैं क्या कर सकती हूँ?' श्रीरामकृष्ण ने तुरन्त उन्हें सुधारते हुए कहा, "नहीं, नहीं, तुम्हें बहुत कुछ करना होगा।" और यह अक्षरशः सत्य हुआ। वे न केवल श्रीरामकृष्ण संघ की संन्यासी सन्तानों की मार्ग-प्रदर्शक शक्ति थीं, वरन विशाल जन-समुदाय उनकी कृपा प्राप्त कर धन्य हुआ था। उन्होंने सभी जाति और धर्मों के लोगों को दीक्षा दी। सभी धर्मों और मतों के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। श्रीरामकृष्ण ने इस्लाम, ईसाई आदि विभिन्न धर्मों की साधनाएँ की थीं और श्री माँ ने इन विभिन्न धर्मावलम्बियों को अपनी सन्तान के रूप में स्वीकार किया। इस तरह वे श्रीरामकृष्ण देव के उपदेशों की जीवन्त प्रतीक बन गयीं। जघन्य पापी भी उनकी कृपा प्राप्त करने से वंचित नहीं रह पाये। इसके पीछे पात्रता का विचार नहीं था। इसके पीछे था उनका अनन्त वात्सल्य प्रेम। वे कहतीं, "पापियों और दुखियों का भार और कौन ग्रहण करेगा?" परवर्ती जीवन में जब किसी दिन कोई भी कृपा-प्रार्थी उनके पास नहीं पहुँच पाता था तो वे शान्त स्वर में ठाकुर से प्रार्थना करतीं,

"दिन बीत गया, आज कोई भी व्यक्ति नहीं आया। क्या तुमने मुझसे नहीं कहा था कि तुम्हें प्रतिदिन कुछ न कुछ करना ही होगा।" दीन-दुखी पापी-तापी सभी पर उन्होंने बिना किसी भेदभाव के कृपा का वर्षण किया था। स्वामी प्रेमानन्दजी ने ठीक ही कहा था, "हम लोग श्री माँ के पास ऐसा विष भेज रहे हैं जिसे ग्रहण करने का साहस हम स्वयं नहीं कर सकते।

वे सभी को आश्रय दे रही हैं। सभी के पाप ग्रहण कर रही हैं तथा उसे पचा ले रही हैं।"

इस तरह श्री माँ ने एक साथ आदर्श पत्नी, आदर्श माँ और आदर्श संन्यासिनी का जीवन बिताया। उनके पूर्व भी संसार में ऐसी नारियाँ हुई हैं जो आदर्श पत्नी, माता अथवा संन्यासिनी के रूप में पूजित हुई हैं; किन्तु एक ही चरित्र में ये तीनों आदर्श अपनी चरमावस्था प्राप्त किए हों, ऐसा उदाहरण विश्व के इतिहास में अप्राप्य है। भगिनी निवेदिता का यह कथन कि श्री माँ भारतीय नारी आदर्श पर श्रीरामकृष्ण की अन्तिम वाणी हैं, अक्षरशः सत्य है। इतना ही नहीं वे विश्वनारी आदर्श की जीवन्त प्रतीक कही जा सकती हैं।

यद्यपि वे प्राचीन भारतीय परम्परा की पक्षपातिनी थीं तथापि उनका दृष्टिकोण अत्यन्त विशाल और उदार था तथा नवीन कल्याणकारी विचारों को ग्रहण करने के लिए सतत तत्पर था। प्राचीन धार्मिक रीति-रिवाजों के प्रति उनकी श्रद्धा अंधविश्वास और कट्टरता से सर्वथा रहित थी। धर्मान्धता का उसमें कोई स्थान नहीं था। वे वर्तमान भारतीय नारी की आकांक्षाओं से पूर्ण रूपेण परिचित थीं तथा उसकी सीमाओं और दोषों के प्रति सचेत थीं। वे भली-भाँति जानती थीं कि भारतीय नारी किस प्रकार युगों से प्रताड़ना और दमन का शिकार रही है। और इसलिए वे उसे पुनः अपनी पुरातन गरिमा और पावित्र्य के पद पर आरूढ़ करने के लिए सतत् प्रयत्नशील थीं।

समस्त सामाजिक परम्पराओं तथा रीति-रिवाजों के के प्रति उनके मन में आदर-भाव था। उन्होंने त्याग और तितिक्षा का जीवन अपनाया था; किन्तु वे जीवन भर गृहिणी बनी रहीं और विभिन्न देवी-देवताओं, धार्मिक परम्पराओं और सामाजिक मान्यताओं का आदर करती रहीं। किन्तु धर्म के नाम पर शरीर को कष्ट पहुँचाने में उनका विश्वास नहीं था अपनी अल्पवयस्का विधवा शिष्याओं के लिए उन्होंने भोजन सम्बन्धी कठोर नियम शिथिल कर दिये थे। उसी प्रकर वे अति शुचिता से बचे रहने को कहती। नलिनी देवी को, जिन्हें शतिशुचिता की बीमारी थी, उन्होंने कहा था "जब तक मनुष्य ने अनेक पाप न किए हों मन तब तक अपवित्र नहीं होता। गाँव में मेरे पैर अनेक बार सूखी टट्टी पर पड़ जाते, तब मैं दो बार गोबिन्द का नाम लेती। सब कुछ पवित्र हो जाता। सब कुछ मन में ही है—पवित्रता अपवित्रता सभी कुछ मन में है।"

यद्यपि श्री माँ आधुनिक दृष्टि से अशिक्षित थीं, तथापि वे उदार विचारों, सुसंस्कृत आचारों तथा तीक्ष्ण सूक्ष्म बुद्धि से युक्ति थीं। भगिनी निवेदिता ने उनमें 'नवीन धार्मिक अनुष्ठानों की तह में प्रवेश करने की' अद्भुत शक्ति देखी थी। एक बार जब उनके सामने भगिनी निवेदिता और एक विदेशी महिला द्वारा ईस्टर का संगीत गाया जा रहा था तो उन्होंने 'पुनरूज्जीवन गान' (Resurrection hymn) के प्रति बिना किसी संकोच और अजनबीपने के बड़ी आन्तरिकता और सहानुभूति प्रकट की तथा जब उन लोगों ने उनके सामने पाश्चात्य विवाह में ली जानेवाली शपथ का वर्णन किया कि अच्छे या बुरे अमीरी या गरीबी, तंदुरुस्ती या बीमारी, सभी अवसर पर हम मृत्युपर्यन्त साथ रहें, तो वे सुनकर बोल उठी "ये धार्मिक शब्द हैं।"

"स्त्री शिक्षा के प्रति उनका बड़ा अनुराग था। भगिनी निवेदिता को उन्होंने स्त्री-शिक्षा के कार्य में अपना आशीर्वाद दिया था। भगिनी सुधीरा को उन्होंने निवेदिता के कार्य को जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया था तथा शिक्षण का कार्य करके कन्या छात्रावास

को आर्थिक सहायता देने की सलाह दी थी। अपनी एक शिष्या को प्रसूति विज्ञान सीखने को प्रेरित किया ताकि अनेकों का कल्याण हो सके। वे वास्तव में चाहती थीं कि भारतीय कन्याएँ अधिक उम्र में विवाहित हों, अधिकाधिक शिक्षित हों, स्वावलंबन और नेतृत्व की क्षमता प्राप्त करें तथा त्याग और पवित्रता का जीवन बिताने के लिए विवाह के लिए मजबूर न की जाएँ; पर वे चाहे कैसी भी जीवनधारा क्यों न अपनाएँ वे शाश्वत नारीत्व के प्रति, मातृत्व के आदर्श के प्रति निष्ठावान बनी रहें तथा एक सही मायने में नारी संस्कृति का निर्माण करें जो केवल पुरुष-शासित समाज का अनुकरण मात्र न हो।

श्री माँ सारदा देवी इस प्रकार सभी दृष्टियों से नारी आदर्श की जीवन्त प्रतीक रही है तथा उनका पूत पवित्र जीवन आनेवाले युगों में मानव समाज का मार्ग प्रदर्शन करता रहेगा।

*

विनम्रता

—श्री व्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
शिक्षा उपाधीक्षक. छपरा (बिहार)

विनम्रता व्यक्ति के मानसिक तथा नैतिक लक्षणों के निर्माण के लिए सर्वस्व है। विनम्रता वह उज्ज्वल गुण है जो व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति, भीतरी सौंदर्य तथा नैतिक गुणों को प्रतिबिम्बित करता है। विनम्रता की प्रशंसा भारतीय तथा पाश्चात्य सभी विद्वानों ने एक स्वर से की है। इसे मानव के सर्वश्रेष्ठ सद्गुण के रूप में सभी ने सराहा है। महात्मा गाँधी ने कहा था कि जिसमें नम्रता नहीं आती वे विद्या का पूरा सदुपयोग नहीं कर सकते। विनम्रता ही मनुष्य की पहली कसौटी है। गाँधीजी के शब्दों में "अभिमान यदि रात्रि का अन्धकार है तो विनम्रता है दिल का प्रोज्ज्वल प्रकाश"। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने नम्रता को मनुष्य की महान विभूति बतलाते हुए कहा था कि हम महत्ता के निकट तब होते हैं, जब नम्रता में महान होते हैं। सुप्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ्यूशियस ने कहा था कि मानव जीवन के जितने सद्गुण हैं, मनुष्यता के जो भी तत्व हैं उनका ठोस आधार एकमात्र विनम्रता है। भारत के वायसराय लार्ड विलिंगटन को भी सन् १९३८ में विवश हो कर कहना पड़ा था "भारतीय जाति विश्व में सबसे सुसभ्य एवं विनम्र है जो कभी भी दया और सहानुभूति को नहीं भूलती।" महाकवि कालिदास ने लिखा है कि संसार में सभी परोपकारी जीव निसर्गतः विनम्र होते हैं। सुप्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक जैवर्ट का कहना है कि "विनम्रता मनुष्यता का शृंगार है। जो विनम्र नहीं वह मनुष्य भी नहीं है।" विनम्रता के अवदान की चर्चा करते हुए अंग्रेज कवि जान बनयान ने कहा है कि "जो व्यक्ति विनम्र हैं निश्चय ही ईश्वर उनका मार्ग दर्शन करते हैं।"

महर्षि व्यास देव ने श्रेष्ठता का आधार नम्रता एवं चरित्र को माना है। चरित्र की संभाल सद् विचार और सदाचार की परिधि में ही हो सकती है। अकबर के दरबार का प्रसिद्ध विद्वान अबुल फजल का कथन है कि हिन्दू विनम्र, सुशील, मिलनसार एवं सभी के प्रति दयालु होते हैं। संसार के किसी भी व्यक्ति से उनका वैर नहीं होता। थॉमस मूर नामक एक अंग्रेज नीतिकार ने बड़े ही प्रभावपूर्ण शब्दों में लिखा है कि बड़ों के सम्मुख विनम्र होना हमारा कर्त्तव्य है, समवयस्कों के सम्मुख

विनम्र होना शिष्टाचार है, छोटों के प्रति विनम्र होना हमारी महत्ता है और सभी के प्रति विनम्र होना हमारी सुरक्षा का कवच है। विनम्रता विवेक की पहली सीढ़ी है। उड़ने की अपेक्षा जब हम झुकते हैं तब हम विवेक के अधिक निकट होते है। प्रसिद्ध चिन्तक शोपेन हायर ने ठीक ही कहा है कि उष्णता जैसे मोम को द्रवीभूत कर देती है वैसे ही विनम्रता मानव प्रकृति को कोमल और द्रवित कर देती है।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज कवि टेनीसन ने लिखा है कि मनुष्य जितना ही महान होगा, उसमें उतनी ही अधिक विनम्रता होगी। किसी भी महान व्यक्ति के लिए इससे बड़ा और कोई दूसरा सद्गुण हो ही नहीं सकता। इसी संदर्भ में विलियम विन्टर ने लिखा है "शिष्टाचार अथवा विनम्रता भद्र आचरण का सुन्दर एवं सुगन्धि पुष्प है। महत्ता के सुमन में ही नम्रता का सौरभ शोभा पाता है।

मोहम्मद पैगम्बर साहब से पूछा गया कि मनुष्य में सर्वोत्कृष्ट क्या है? उन्होंने कहा नम्रता संयम और आज्ञापालन तथा विनम्रतापूर्वक किया गया दान। इस-लाम का विशिष्ट गुण है विनम्रता, जुबान की मिठास और मेहमाननवाजी। वस्तुतः अल्लाह विनम्र है और विनम्रता को चाहता है और वह विनम्र को सब देता है जो कठोर को नहीं देता है। अल्लाह ने सीख दी है कि विनम्र और विनीत बनो तथा घमण्ड न करो तथा कोई किसी को न सताये। अल्लाह विनम्र है तथा वह विनम्रता से प्यार करता है। पालने से लेकर कब्र तक विनम्र रहो तथा ज्ञान की खोज करो। विनीतता और विनम्रता ईमान की दो शखाएं हैं। भगवान बुद्ध की आज्ञा है कि कर्कश न बोले। उनका कथनहै कि विनम्रता और चिन्तनशीलता ही वे नाभिक हैं जिनमें सत्य की अटल धुरी जमी हुई है। तुम्हारे कष्टों का कारण जो भी हो पर दूसरों को आहत न करो, विनम्र रहो। धैर्य के साथ सहनशीलता सबसे ऊँची तपस्या है। विनम्र बनो और अनुचित व्यवहारों का परित्याग करो जो तुम्हारे मन को जड़ बना देते हैं। उदात्त सहनशीलता विनम्रता और धैर्य तथागत का परिधान है।

आत्मा का सत्य स्वरूप विनम्रता है। इसमें जीवन का सारसत्य है। ज्ञान और अखंड ज्योति है। मधुर वाणी की साधना-उपासना में परम-पद की प्राप्ति है। वाणी की साधना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। विनम्रता जीवन का महाविज्ञान है। वाणी के माधुर्य में विनम्रता संनिहित है। मीठी बोली में हमारी विनम्रता का वाङ्मय प्रकाशन है। जार्ज हर्बर्ट की तो मान्यता है कि मीठी बोली में दिये गये आदेशों में जो शक्ति है वह रोब से दिये गये आदेश में नहीं। पी०जे० बेली ने लिखा है कि "मनुष्य में जितने सद्गुण हैं, सभी का मूलाधार विनम्रता है।" बाइबिल में नये नियम की घोषणा है कि 'जो मनुष्य अपने को बड़ा और कठोर समझता है वह गड्ढे में ढकेल दिया जायेगा और जो मनुष्य विनम्रता का आचरण करता है, उसे ऊपर उठा दिया जायेगा। जो विनम्र होगा वह स्वभावतः तितिक्षु भी होगा। बाइबिल के इसी भाव को होम्स कवि ने लिखा है कि "बुद्धिमानी इसी में है कि हम शान्त और विनम्र बन कर रहें। सचमुच विनम्रता ही मानव जीवन की परम चरितार्थता'है। जिसके जीवन में विनम्रता नहीं उसका जीवन निष्फल है। ओवेन मेरिडथ नामक एक अंग्रेज कवि ने विनम्रता की विशेषताओं का गुणगान करते हुए लिखा है कि जब तक मनुष्य अपने जीवन में विनम्रता का पाठ नहीं पढ़ लेता तब तक वह किसी भी दूसरे पाठ को ठीक से नहीं सीख सकता। विनम्र व्यक्ति निश्चित रूप से ईश्वरार्पित होता है।

गुरु नानक की वाणी है—यदि दया तेरी मस्जिद है, विश्वास तेरी पूजा का आसन; ईमान तेरा पुराण और विनम्रता सुन्नत, संतोष तेरा उपवास तब तू सच्चा मुसलमान है। उनका कथन है किविनम्रता के पीछे संसार के लोग चलते हैं। वाणी अमृत है।

हाट बाट शब्द का खेलु विनु शब्दै क्यों होवे मेलु।
सारी सृष्टि शब्द के पीछे; नानक शब्द घटै घटि आछै।

महाभारत में नम्रता, वृत्त या शीलपर बहुत बल दिया गया है। शील ऐच्छिक कर्म के अभ्यन्तर पक्ष एवं बाह्य पक्ष दोनों का समन्वय करता है। विदुर नीति

१३/६०/७५) में कहा गया है कि शील से रहित यदि कोई धन, विद्या या कुल में श्रेष्ठ है तो वह पूज्य नहीं, किन्तु यदि शूद्र भी नम्र धर्मज्ञ तथा सदाचारी है तो वह पूज्य है। धर्म से सम्पत्ति का उद्भव होता है, धर्म से सुख की प्राप्ति होती है पर नम्रता और सदाचार से मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। स्वामी विवेकानन्दजी कहा करते थे गम्भीरता के साथ शिशुवत सरलता को मिलाओ तथा मन वाणी और कर्म से पवित्र बनो। कबीर ने प्रतिपादित किया था :

(१) सीलवन्त सबते बड़ो, सर्व रतन की खान।
तीनों लोक की सम्पदा रही शील में आन॥

(२) ज्ञानी, ध्यानी, संयमी दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत है सीलवंत कोई एक॥

विनम्रता, सहानुभूति और सदाचार संत जीवन के मुख्य पीठाधार हैं। संतों की वाणी में विनम्रता एवं सदाचार का नाम है रहनी। संत मत में कथनी से करनी का बड़ा महत्व है इसे संत टेकमन राय इस प्रकार निरूपित करते हैं—

भजन करे से बेटा हमारा, ज्ञान पढ़े सो नाती।
रहनी रहे से गुरु हमारा, हम रहनी के साथी॥

दया विहीन धर्म, जल विहीन सरिता, पल्लव बिना वृक्ष एवं विनय शून्य वाणी का कोई महत्व नहीं होता है। शिष्टाचार और विनम्रता बरतने में हमारा कुछ भी खर्च नहीं होता परन्तु यह वह पूंजी है जो हमें जीवन भर लाभ ही देती है। डेफो का कथन है। विनम्रता मनुष्य का सच्चा निर्माता है। जिसके जीवन में विनम्रता नहीं उसका जीवन निष्फल है। जेम्स मॉन्टगोमरी के अनुसार सर्वोत्तम श्रृंगार उस रमणी का है जिसने विनम्रता का परिधान पहन रखा है। सुप्रसिद्ध दार्शनिक सिसरो ने लिखा है कि ऊँचे पद की मर्यादा विनम्रता में है। विनम्रता की महत्ता का गान करते हुए थैम्समूर ने लिखा है, विनम्रता वह मधुर मूल है जिससे सभी दैवी सद्गुणों के पौधे पनपते हैं। विनम्रता ऐसा ही स्तुत्य सद्गुण है। यह मानवता का मुकुट मणि है। विनम्रता ही मनुष्य का परिचय है।

श्रीरामकृष्ण देव ज्ञान और भक्ति के चूड़ान्त शिखर पर प्रतिष्ठित होने के बावजूद विनम्रता के जीवन्त विग्रह थे। विनम्रता उनमें कूट-कूटकर भरी थी। उनका कथन है—"ऊँचा उठना हो (महान् बनना हो) तो पहले नीचा (नम्र) बनना चाहिए। चातक पक्षी का घोंसला नीचे होता है पर वह आसमान में बहुत ऊँचा उड़ता है। ऊँची जमीन में खेती नहीं होती उसके लिए नीची जमीन चाहिए, जहाँ पानी जम सके। तभी खेती हो सकती है।" एक स्थल पर वे पुनः कहते हैं—"तराजू का जो पलड़ा भारी होता है, वह नीचे आ जाता है और जो हल्का होता है वह ऊपर उठ जाता है। इसी तरह जो व्यक्ति गुणी और सामर्थ्यवान होता है वह सदा नम्र और विनयशील होता है। मूर्ख ही झूठे अहंकार-अभिमान से फूला रहता है।"

श्रीरामकृष्ण की मान्यता तो यह है कि विनम्रता के बिना मन को ईश्वर में निमग्न ही नहीं किया जा सकता। वे कहते हैं—"सुई में धागा पिरोना हो तो धागे को पहले ऐंठकर नुकीला बनाओ ताकि उसमें रोएँ न रहें तभी वह सुई के छेद में से जा सकता है। मन को ईश्वर में निमग्न करना हो तो दीन, हीन, विनम्र बनो, वासनारूपी रोएँ दूर कर दो।"

लेकिन जो विनम्रता नीचे ले जाती हो वह वरेण्य नहीं। श्रीरामकृष्ण हमें सचेत करते हुए कहते हैं—"जो अहंकार आत्मा की महिमा को प्रकट करता है वह अहंकार नहीं। जो विनय आत्मा के गौरव को नीचे लाती है वह विनय नहीं।

अतः हमें उस विनम्रता को अपनाना चाहिए जो हमें आत्मिक दृष्टि से उन्नत करे।

क्षुरस्य-धारा (४)

लेखक—स्वामी त्यागानन्द
रामकृष्ण मठ, मद्रास
अनुवादक - ब्र० रवीन्द्र
रामकृष्ण मिशन
अलांग (अरुणाचल प्रदेश)

[प्रस्तावना

हिमालय की एक गुफा के चारों ओर की अलौकिक सुन्दरता से आकर्षित हो नारद ने वहाँ अपना आसन जमाया तथा गम्भीर एवं सुदीर्घ समाधि में डूब गये। कामदेव, जिसे इन्द्र ने नारद की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने हेतु भेजा था, अपने प्रयत्नों में असफल रहा। वह नारद के मन को काम-क्रोध से कलुषित नहीं कर पाया। नारद ने उसे क्षमा की। अपने प्रिय भक्त की रक्षा हेतु सर्वत्र ही इस घटना को श्रीहरि की ही विजय के रूप में मनाया जा रहा था। गर्व से फूले नारद को अपनी महिमा का प्रचार करने की तृष्णा ने घेरा। उसने उस घटना को शिवजी के समीप वर्णित किया। शिवजी ने अन्य किसी के समक्ष उसे दोहराने के लिए नारद को सावधान किया। नारद ने तत्काल निष्कर्ष निकाला कि शिवजी उनसे ईर्ष्या करते हैं। तत्पश्चात् वे वैकुण्ठ गये। वहाँ भी पूर्ववत् उन्होंने अपनी विजय-कथा प्रभु के समक्ष कही। नारद के मस्तिष्क में अब जरा भी शंका नहीं थी कि वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं, शिवजी एवं श्रीहरि से भी श्रेष्ठतर। प्रभु मुस्कराये। वे समस्या को समझ गये एवं उन्होंने अपने भक्त को उचित मार्ग पर ले आने की उक्ति सोच निकाली।

प्रभु की अलौकिक शक्ति द्वारा प्रकट हुए विलक्षण एवं स्वर्णमय राज्य ने नारद का ध्यान आकर्षित किया। आश्चर्यचकित हो, नारद ने वहाँ जाने का निश्चय किया। वहाँ जब उन्होंने राजकुमारी विश्वमोहिनी को अपने स्वयंवर समारोह हेतु तैयार होते देखा, तो वे उसके प्रेम-पाश में बुरी तरह फँस गये। यह निश्चित करने हेतु कि राजकुमारी स्वयंवर में उन्हीं का चयन करे, नारद ने श्रीहरि से स्वयं उनकी ही अलौकिक सुन्दरता के लिए प्रार्थना की। प्रभु खुशी से राजी हो गये एवं उन्होंने नारद को एक बन्दर का मुखौटा प्रदान किया। आनन्द से भरे नारद इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ थे कि उनकी प्रार्थना किस प्रकार सुनी गयी है। वे तत्काल उसी स्थान की ओर बढ़ चले जहाँ स्वयंवर समारोह सम्पन्न होने ही जा रहा था।]

नारद ने स्वयंवर-भवन में प्रवेश किया। हजारों राजा-महाराजा वहाँ एकत्रित हुए थे एवं सभी को विवाह में विश्वमोहिनी का हाथ थामने की तीव्र आकांक्षा थी। जब नारद द्वार पर उपस्थित हुए, सभी राजागण सादर उठ खड़े हुए एवं देवर्षि को प्रणाम किया। आश्चर्य कि उन लोगों ने एक ऐसे व्यक्ति का आदर किया जिसके कन्धों पर एक बन्दर का मुखौटा था? अच्छा, यह भी प्रभु की ही युक्ति के फलस्वरूप सम्भव हुआ। वहाँ पर उपस्थित राजाओं ने नारद को उनके वास्तविक रूप में ही निहारा। प्रभु ने इस खूबी से सभी चालें चली थीं कि बन्दर-रूप आवश्यकता पड़ने पर ही दृष्टिगोचर होता और वह भी चुने हुए व्यक्तियों के लिए। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि नारद सबके सम्मुख हँसी के पात्र बनें, प्रभु की ऐसी इच्छा कदापि नहीं थी। उनका उद्देश्य नारद को उनकी भूलों को दर्शाने में उनकी सहायता करना तथा उचित मार्ग में लाना मात्र ही था।

दो प्रकार के लोग इस संसार में दोष देखा करते हैं।

पहली श्रेणी में वे लोग आते हैं जो तुम्हारी गलतियों एवं कमजोरियों को दिखाकर अन्य लोगों के समक्ष तुम्हें नीचा ठहराने में रुचि रखते हैं। किसी तरह ऐसा करने में उन्हें बड़े सुख का अनुभव होता है एवं एक आन्तरिक-तृप्ति भी होती है कि वे तुमसे उच्चतर हो गये हैं। दूसरी श्रेणी उन व्यक्तियों की होती है जो तुम्हारे दोष दिखाकर तुम्हारी सहायता करना चाहते हैं ताकि उन दोषों से तुम मुक्त हो जाओ। उनका उद्देश्य तुम्हें दूसरों के समक्ष नीचा दिखाना कभी नहीं होता। अतः वे अपना काम इतनी शान्ति एवं बुद्धिमानी से करते हैं जिससे तुम्हारी प्रतिष्ठा भी बनी रहे एवं तुम दुविधापूर्ण स्थिति से भी बच निकलो।

अतः जब नारद राजभवन में प्रविष्ट हुए, सभी ने उनका वास्तविक रूप ही देखा एवम् आदर सहित स्वागत किया। जो भी हो नारद ने सोचा कि यह उनकी प्रभु की अनुपम सुन्दरता को धारण करने की वजह से ही हुआ है।

वे गये एवं एक अर्थपूर्ण ढंग से अपना आसन ग्रहण किया। इससे तुरन्त बाद ही दो व्यक्तियों ने भवन में प्रवेश किया एवं नारद की अगल-बगल में ही अपना आसन जमाया। अरे! ये दोनों महानुभाव कौन थे? हमें बताया गया कि वे दोनों रुद्रगण थे, शिवजी के सेवक। वे लोग नारद का उस समय से पीछा कर रहे थे जबसे नारद शिवजी से अपनी महानता की डींग हाँककर कैलाश से चल पड़े थे। उन्होंने नारद एवं शिवजी का वार्तालाप सुना था एवं सुनकर क्रुद्ध एवं आहत हुए थे कि नारद उनके गुरुदेव से भी प्रतियोगिता करने का दुःसाहस रखता है एवं सूक्ष्म रूप से अपने आपको बड़ा भी समझता है। कौन-सा सेवक ऐसे अतिथि से प्रसन्न होगा, भला? अतः विनयशील भोले-भंडारी ने तो इसका जरा भी बुरा नहीं माना (क्योंकि वे इतने महान् हैं कि ये बातें उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकीं) एवं मामले को हँसी में ही टाल दिया। उनके सेवक (यथार्थतः, जो संकीर्ण-दृष्टिकोण वाले थे) नारद को क्षमा न कर सके। वे जानते थे कि उनके गुरुदेव के साथ ऐसा अभद्र व्यवहार परिणामतः दुःख में ही परिणत होगा तथा मजा देखने हेतु वे उत्सुकतापूर्वक नारद के पीछे हो लिये। वे वैकुण्ठ में छायावत् नारद के साथ थे, तथा उसके पश्चात् इस स्वर्णमय राज्य में जहाँ विश्वमोहिनी राजकुमारी थी। उन्होंने नारद को श्रीहरि के दिव्य रूप हेतु याचना करते देखा था एवं उन्होंने यह भी देखा था कि कैसे प्रभु ने चालाकी पूर्वक साधु को मर्कट-रूप से विभूषित किया था।

हाँ, नारद का मर्कट-मुख शिवगणों से छिपा नहीं था। वे नारद को इस रूप में देख आनन्दित हुए थे, जिसे वे अपना 'शत्रु' तक मानने लगे थे। अब वे ही भेष बदलकर कौतुकपूर्वक स्वयंवर समारोह में आये थे इस नाटक की चरमावस्था का मजा लेने। तो इस इस विशाल जनसमुदाय में केवल ये दोनों ही नारद के मर्कट-मुख को देखने में समर्थ थे। एक अन्य भी कोई था, जो शीघ्र ही इसे देखने वाला था।

विश्वमोहिनी ने, भवन में हाथों में वरमाला लिए अपनी सखियों के संग पदार्पण किया। सभी आँखें उसकी ओर टकटकी लगाए देखने लगी। आशा, उत्सुकता रोमांच भवन की हवा में भी स्पष्टतया अनुभूत होने लगे। विश्वमोहिनी ने उड़ती नजर से पूरी सभा को निहारा। जब उसकी नजर नारद पर पड़ी, तो वह इतनी क्षुब्ध हो गयी कि एक अर्धपशु भी उसे जीतने हेतु इस स्वयंवर सभा में उपस्थित हो गया? वह नारद के कहीं समीप भी नहीं फटकी बल्कि उसने उस पूरी कतार से ही जाना इन्कार कर दिया।

नारद के लिए यह बहुत बड़ा आघात था। उन्होंने भयंकर रूप से अपमानित अनुभव किया। कितना आश्चर्यकारक है। इस बदलते परिवेश में नारद को अपेक्षाकृत रूप से अपने आपको कहाँ तो सौभाग्यशाली समझना था। जब माया तुम्हारे पास आना नहीं चाहती एवं उपेक्षा करती है, तो इसपर तुम्हें आनन्दित होना चाहिए या दुःख मनाना चाहिए? उसका नारद-

के समीप न आना यथार्थतः प्रभु का रक्षा-कवच जैसा ही था। जब उसने सम्पूर्ण कतार से जाने में भी उपेक्षा दर्शायी जिसमें नारद विराजमान थे, तो वे सभी लोग जो नारद के साथ बैठे थे, माया से रक्षा पा गये। यह केवल सत्संग को ही दर्शाता है। नारद एवं अन्य (उनकी कतारवाले राजा) लोग उस अनिश्चितता एवं उत्कण्ठा से मुक्त थे जो अन्य एकत्रित नृपगण अनुभव कर रहे थे। जैसे ही राजकुमारी हर राजा के पास से गुजरती थी, हरकोई उत्सुकतावश यह आशा करता था कि वरमाला उसके ही गले को सुशोभित करेगी। जब वह आगे बढ़ जाती तो वह राजा हताश एवं निराश हो उठता था। परन्तु नारद तो इन अनिश्चितताओं एवं उत्कण्ठाओं से सर्वथा मुक्त ही थे। जो भी हो, अपने नायक की वर्तमान मानसिक गढ़न ऐसी थी कि वह इस ढंग से वस्तुस्थिति को भांपना नापसंद करती। इसके अतिरिक्त, वे कुछ असमंजस एवं दुविधा में पड़ गये। वे यह समझ नहीं पा रहे थे कि राजकुमारी ने उनकी उपेक्षा करने की बात भी कैसे सोची, क्योंकि वे ही तो इस बृहत् जन समुदाय में अतुल सौन्दर्य के अधिकारी जो थे। परन्तु शीघ्र ही उनकी आखें खुल गयीं, जब एक अविश्वसनीय घटना ने सबको चकाचौंध कर दिया।

राजकुमारी क्रम से, बिना किसी को माला पहनाए हर एक के सामने से चली गयी। जैसे ही वह प्रवेश द्वार पर पहुंची, अचानक श्रीहरि अपने पूर्ण सौन्दर्य एवं भव्यता लिए प्रकट हुए। विश्वमोहिनी का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। वह उत्साहपूर्वक दौड़ती हुई गयी एवं माला प्रभु के गले में पहना दी। देवगणों ने स्वर्ग से पुष्पवर्षा की एवं हर्षध्वनि के मध्य प्रभु ने उसे अपने वाहन गरुड़ पर अपने समीप बिठाया एवं वैकुण्ठ की ओर उड़ चले।

नारद को काटो तो खून नहीं। तत्काल ही उन्हें यथार्थ परिस्थिति का भान हो आया। 'प्रभु ने मेरे साथ छल किया है।' नारद बुझती सांस के बीच बुदबुदाये, क्रोध से उफनते खोखले शब्दों में। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु उनके पास शब्द नहीं थे। वे उन दोनों व्यक्तियों की ओर मुड़े जो उनके समीप ही बैठे थे एवं और भी अधिक क्रुद्ध हो उठे जब उन्होंने उन दोनों को हर्ष से फुसफुसाते देखा मानों वे उनकी इस दुरवस्था का बड़ा जायका ले रहे हों। उपहासपूर्ण लहजे में उन्होंने नारद से कहा, "हा! हा! जाओ, और आईने में अपना मुख देखो!!"

आईना एक उपयोगी वस्तु है, जिसे साथ में भी रखा जा सकता है। यह स्वभाविक ही है कि लोग आईने के सामने खड़े हो स्वयं को निहारा करते हैं विशेषकर तब जबकि लोगों से मिलने बाहर जाना हो। यह सभी करते हैं और इसमें अनुचित भी कुछ नहीं है। परन्तु स्वयं होकर आईने में देखना तथा अन्य किसी के द्वारा देखने के लिए बाध्य किया जाना, ये दोनों समान बातें नहीं होतीं। पहले वाली बात तो स्वाभाविक कृतिमात्र है, परन्तु बाद की घटना भयंकर अपमान की बात होती है। नारद अब अपने आपे से बाहर हो गये। उन्होंने समीप के तालाब में झांका तथा एक बंदर को अपनी ओर निहारते देख असमंजस में पड़ गये। शिवगणों के लिए अब बहुत हो चुका था। जब उन्होंने साधु को पानी में झांकते देखा, तो वहां से भाग निकलने में ही अपनी भलाई समझी बजाय साधु द्वारा शापित होने के। जैसे ही नारद ने ऊपर देखा, उन्होंने दोनों को भागते पाया। तत्काल ही जलते शब्द उनके होठों से निकल पड़े, 'तुम दोनों को मैं शाप देता हूं कि तुम राक्षस बनकर धरती पर कष्ट पाओगे।"

एक उपयुक्त सजा। शिवगणों का व्यवहार अशाम्य था। नारद के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उनकी कृति में राजकुमारी को पाने की वासना थी। परन्तु शिवगण स्वयंवर में राजकुमारी को पाने हेतु कदापि नहीं आये थे। वे तो केवल नारद की अवनति देखने के इच्छुक थे। उन्होंने नारद के दुःख एवं कष्टों से आनन्द पाया। यह एक विशिष्ट राक्षसी वृत्ति है। यदि नारद की कृतियों को कमजोरी का नाम दिया जाए शिवगणों की वृत्तियां आक्रामक थीं। कमजोरी शाम्य

भी हुआ करती है, परन्तु आघातों के लिए सजा का विधान अनिवार्य होता है। अपनी कृतियों द्वारा दोनों ने सभी राक्षसी वृत्तियां दर्शायी थी। नारद के शाप ने केवल उनके राक्षस को बाहर निकाल दिया जो भीतर छिपा था। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया है, कि आन्तरिक कमजोरियां जो अचेतन मस्तिष्क में विद्यमान रहती है, उनका बाहर आना बेहतर है क्योंकि तभी उनके सम्पूर्ण रूप से चले जाने की सम्भावना रहती है। तुम कब तक कालीन के नीचे की धूल झाड़ने का प्रयास करोगे ? एक समय ऐसा भी आएगा जब कालीन की बाहरी शोभा फिर लोगों को मूर्ख नहीं बना पाएगी एवं भीतरी दुर्गन्ध बाहर अपना रास्ता बना लेगी। इसीलिए कालीन को निकाल देना अच्छा है, गन्दगी निकाली जाए एवं कमरे को झाड़-पोंछकर स्वच्छ किया जाए। अतः उनके भीतर के असुर को बाहर निकालकर नारद ने उनके हित में ही कार्य किया। परन्तु यह सत्य है कि नारद ने उनको 'सहायता' हेतु उन्हें शाप तो नहीं दिया था। उनकी यह कृति तो बदले की भावना से बिना विचारे हुई थी। यह तो उनके क्रोध ने बाहर निकलने का केवल एक मार्ग पाया था।

मत भूलिए कि ये वही नारद हैं जो कुछ काल पहले सर्वत्र क्रोध पर अपनी विजय का डंका पीटा करते थे। जो अब हम देख रहे हैं, वह उसके ठीक विपरीत है; यह तो क्रोध ही है जिसने नारद पर विजय पायी थी।

शाप देने के पश्चात्, असमंजस में पड़े नारद ने पुनः पानी में झाँका। परन्तु पहले उन्होंने जो देखा था वह मर्कट-रूप अब नदारद था। नारद को अपना स्वभाविक प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर हुआ। प्रभु का कार्य अब पूर्ण हो चुका था एवं उन्होंने अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा जो जादुई रूप निर्मित किया था, उसका संवरण कर लिया गया। कम-से-कम अब तो नारद को होश आ जाना था। परन्तु नहीं, उनकी शिक्षा में कुछ शेष पाठ अब भी बचे थे। अब भी क्रोध से आगबबूला हुए नारद सीधे वैकुण्ठ की ओर चल पड़े। 'हरि ही सब बातों की जड़ है,' उन्होंने स्वयं से कहा, 'वे स्वयं ही राजकुमारी के प्रेमाकर्षण से बँधे थे, इसीलिए सारे संसार के समक्ष मुझे मूर्ख ठहराया।'

सच कहा जाए तो केवल तीन ही व्यक्तियों को नारद का मर्कट-मुख ज्ञात था, दोनों शिवगणों एवं राजकुमारी को। अन्य सभी के लिए वे सामान्य प्रतीत होते थे।

परन्तु अनेक लोगों के इस तरीके से हम भली-भाँति परिचित ही हैं। वे हर छोटी मुश्किल को आकाश की ऊँचाइयों तक उठा देते हैं। उसी तरह नारद ने भी ऐसा अनुभव किया कि उन्हें 'पूरे संसार के समक्ष' मूर्ख बनाया गया है। इसीलिए प्रभु से अपना हिसाब चुकाने के लिए नारद शीघ्रतापूर्वक वैकुण्ठ चल दिये।

कल्पना करो तुमने एक स्वप्न देखा कि तुम्हारे पड़ोसी ने तुम्हें करारा थप्पड़ मारा है। दूसरी सुबह हाथ में छड़ी लेकर क्या तुम अपना स्वप्न वाला हिसाब चुकाने अपने पड़ोसी के घर जा धमकोगे ? ठीक ऐसे ही, नारद भी उसी मार्ग पर अग्रसर हो रहे थे। स्वर्णमय राज्य, स्वयंवर समारोह, विशिष्ट अतिथिगण, राजकुमारी नारद का मर्कट-मुख सभी कुछ तो लुप्त हो चुका था। नारद को ऐसे स्वप्न पर जी खोलकर हँसना था। परन्तु जैसा हमने कहा है, उनकी शिक्षा अभी पूर्ण नहीं हुई थी। वे अबतक यह नहीं जान पाये थे कि 'काम एवं क्रोध के महानतम विजेता के रूप में स्वयं को जो वे समझते थे, दरअसल इन्हीं काम-क्रोध-रूपी रिपुओं द्वारा जीत लिये गये थे।

उन्होंने श्रीहरि को शाप देने की ठान ली और यदि यह सम्भव न हुआ तो आत्महत्या करने का निश्चय किया।

जैसे ही वे अपनी पूरी गति के साथ प्रभु से मिलने जा रहे थे, प्रभु स्वयं श्रीलक्ष्मीजी एवं विश्वमोहिनी के साथ उनके समक्ष उपस्थित हो प्रेमपूर्ण वाणी में बोले,

'प्रिय पुत्र कहाँ जा रहे हो ?' यह अति हो गयी थी, नारद अत्यंत कठोर हो उठे। प्रभु ने न केवल उनकी विवाह-योजना नष्ट की अपितु उनकी अभिलषित वस्तु स्वयं के लिए ही चुन लिया। अब निर्दयतापूर्वक अपनी दोनों भार्याओं के साथ वे नारद के समक्ष आये हैं एवं मासूम बनकर पूछ रहे हैं कि साधु कहाँ जा रहे हैं ? नारद का खून खौलने लगा। परन्तु उनकी समझ एक बीमार एवं विकृत मस्तिष्क की समझ थी, अतएव, उन्होंने प्रभु की चेष्टाओं को पूर्णतया गलत समझ लिया।

नारद ने कल्पना कर ली कि प्रभु राजकुमारी के साथ आकर उन्हें चिढ़ाना तथा दुविधा में डालना चाहते हैं। परन्तु सत्य यह था कि विश्वमोहिनी स्वयं प्रभु की ही शक्ति थी एवं यह तो स्वाभाविक ही है कि वह सर्वदा उनके संग रहे। प्रभु का प्रश्न 'तुम कहा जा रहे हो ?' वस्तुतः नारद को जाग्रत करने हेतु ही था !

यदि तुम्हारा मित्र किसी स्थान पर जाना चाहे एवं वह सर्वथा विपरीत दिशा में अग्रसर हो तो क्या तुम उसे सावधान नहीं करोगे कि 'तुम जा कहाँ रहे हो ?' नारद वैकुण्ठ जाना चाहते थे। परन्तु इस हेतु उन्होंने क्रोध एवं बदले की भावना अथवा प्रतिशोध का मार्ग चुना था। क्या यह मार्ग प्रभु तक पहुँच पाएगा ? अथवा यह प्रभु से दूर ही ले जाएगा 'काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीनों नरक के द्वार खोल देते हैं'—ऐसा गीता कहती है। (गीता १६-२१)[1]। प्रतिशोध की भावना से विक्षिप्त हुए नारद वस्तुतः वैकुण्ठ की ओर नहीं जा रहे थे अपितु सीधे प्रतीक्षारत नरक के द्वार की ओर चल पड़े थे।

सदा अपने प्रिय भक्त के कल्याण में तत्पर प्रभु अपने प्रिय नारद से इसके अलावा भला और क्या प्रश्न करते, मेरे पुत्र, तुम कहाँ जा रहे हो ?'

परन्तु नारद, 'क्रोध के विजेता', अब मानो स्वयं मूर्तिमान क्रोध ही थे तथा इन परिस्थितियों में हर एक को गलत समझ रहे थे। सदाचार के सभी नियमों का उल्लघन कर अब वे प्रभु को 'अत्याचारी' जैसे अपशब्दों से सम्बोधित करने से भी बाज नहीं आ रहे थे। उन्होंने समुद्र-मन्थन का विषय निकालकर श्रीलक्ष्मीजी को हथियाने में चालाकी एवं धूर्तता के लिए प्रभु को दोषी ठहराया तथा अमृत का भाग असुरों को चतुराईपूर्वक न देने में उन्हीं को अपराधी भी ठहराया। नारद ने प्रभु से, यह कहकर ही सन्तोष पाया कि उनका स्वयं पर नियन्त्रण न होने की वजह से वे मनमाना अनुचित व्यवहार करते हैं। नारद अब मानो स्वयं निर्वाचित धर्मरक्षक बन बैठे थे, जो प्रभु के अनीतिपूर्ण-अन्यायी शासन के विरुद्ध संसार का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। जो भी हो नारद अन्य बातों की अपेक्षा स्वयं अपनी पराजय एवं कुण्ठाओं से ही मतलब रखते थे। प्रभु के समस्त अपराधों का वर्णन कर जब नारद सन्तुष्ट हो गये, तब उन्होंने प्रभु को क्रमशः तीन शाप दे डाले। "ओ प्रभु, मैं तुम्हे शाप देता हूँ कि तुम्हें मानव-शरीर धारण कर जन्म लेना पड़ेगा क्योंकि इसी रूप में स्वयंवर समारोह में तुमने मुझसे छल किया है। दूसरा शाप यह कि तुम्हें भी अपनी प्रियतमा के विछोह का दर्द सहन करना पड़ेगा, जिस विराहग्नि में जैसे मैं स्वयं जल रहा हूँ। तीसरा शाप यह है कि तुमने मुझे मर्कट-रूप प्रदान किया, तो इन्हीं बन्दरों पर तुम्हें अपने मानव-जन्म में आश्रित होना पड़ेगा।

नारद ने अपने न्याय को घोषित कर प्रभु की ओर विजयमुद्रा में देखा. उन्होंने पाया कि प्रभु तो फिर भी शान्त-प्रफुल्ल होकर मंद-मुस्कान भर रहे हैं। यह नारद की सबसे बड़ी पराजय थी। इतने सारे लांछनों को सुनने के बावजूद प्रभु ने तिलमात्र भी धैर्य नहीं खोया और न मर्माहत होने तथा क्रोध की एक शिकन ही उनके उज्ज्वल मुख पर देखी गयी। इसके विपरीत वे मुस्कराते थे मानो कह रहे हों 'मैं इसी बात की प्रतीक्षा कर रहा था।' श्रीलक्ष्मी तथा विश्वमोहिनी इस बीच प्रभु के

---

1. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः
काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।

वाणी से अन्तर्धान हो चुकी थी एवं जैसे ही नारद ने प्रभु के आनन्द मय करुण चेहरे पर दृष्टिपात किया, उनकी आँख पर से माया का पर्दा उठ गया। उन्हें अब जाकर कहीं होश आया। वे तत्क्षणात् समझ गये कि किस तरह अस्थायी रूप से माया की शक्ति ने उन्हें घेर रखा था एवं कैसे प्रभु ने उनकी रक्षा की है।

नारद अपने मूर्खतापूर्ण आचरण की वजह से आत्म-ग्लानि से भर उठे। सर्वोपरि, अपने प्रभु के प्रति ही शाप देने के दुस्साहस के कारण वे अपने आपको क्षमा न कर सके। आत्मग्लानि, पश्चाताप एवं तीव्रव्यथा के फलस्वरूप वे प्रभु-चरणों पर गिर पड़े एवं आतुरतापूर्वक क्षमा-याचना की। उन्होंने कहा कि मैं अपना शाप वापिस लेता हूँ परन्तु प्रभु ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। प्रभु बोले, 'मेरे बच्चे, क्या मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी होना सम्भव है? नारद ने पहले प्रभु को मनमानी करने हेतु दोषी ठहराया था क्योंकि उनपर किसी का भी नियंत्रण नहीं चलता। अब प्रभु ने उपहास-पूर्वक नारद को यह दर्शा दिया कि उनका वह दावा भी सर्वथा मिथ्या है। अब नारद का शाप प्रभु के सिरपर नियन्त्रण करने के लिए था।

नारद के शाप की वजह से ही प्रभु को राम के जन्म के रूप में आना पड़ा। उन्होंने इस अवसर का उपयोग धर्म-संस्थापन एवं अधर्मियों के नाश के रूप में किया। उन्होंने मानव तन धारण कर मर्यादा पुरुषोत्तम का जीवन यापन कर सभी के समक्ष एक ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया जो शताब्दियों से सतत प्रेरणा का उत्स बना हुआ है। उन्होंने वानरों की सहायता लेकर विधर्मियों का नाश किया जिनमें प्रमुख रूप से रावण एवं कुम्भकर्ण थे। तुमने अन्दाज तो लगा ही लिया होगा, कि ये दोनों असुर कौन थे? हाँ, उन्हें भी नारद के शाप की वजह से नीचे आना ही पड़ा। ये दोनों वही शिवगण थे जिन्हें हमने स्वयंवर समारोह में देखा था। प्रभु ने शाप के अन्य भाग की पूर्ति भी की, जबकि वे सीतादेवी के विरह में आँसू बहाया करते थे। और वह भी कितनी यातनापूर्णवेदना हुआ करती थी! हम रामायण में पढ़ते हैं कि जब राम रोते थे, तो समस्त प्रकृति ही द्रवीभूत हो उठती थी। पक्षी एवं जानवर पेड़ एवं लताएँ—सभी अश्रुपात किया करते थे, राम को व्यथित देखकर। नारद को मुँह छिपाने के लिए भी स्थान नहीं मिलता था जब वे अपने अविवेक पूर्ण शाप का ऐसा फल देखते थे। कुछ काल अनन्तर तुम देखोगे कि वस्तुस्थिति नाटकीय ढंग से परिवर्तित हो गयी है। जैसे-जैसे कहानी अग्रसर होती है, तुम देखते हो कि राम शान्त, स्थिर एवं प्रसन्न भी दीख पड़ते हैं। वे मानो दर्द-भरी कहानी के नायक हों, जो अपने अभिनय से दर्शकों को रुलाते हैं एवं पर्दा गिरते ही पुनः प्रसन्न हो जाते हैं। दर्द एवं प्रसन्नता कभी साथ साथ नहीं चलते। परन्तु स्वयं ओढ़ी गयी कष्ट सहने की क्षमता हममें खुशी एवं पूर्णता का बोध कराती है बजाय दर्द एवं वेदनाओं के जो बाहर से आती हैं। प्रभु ने नारद के शाप को स्वयं ही स्वीकार किया था एवं उसे प्रभावी बनाने हेतु उन्हें भी संसार के नियमों में से होकर जाना पड़ा। उस अनन्त सत्ता को नश्वर रूप लेकर मानव-मुक्ति का उपाय करना पड़ा। मानव स्वयं भी अनन्त-स्वरूप होता है परन्तु उसे अपने निज स्वरूप का स्मरण नहीं रह पाता। रामकथा को हम विभिन्न स्तरों से देख सकते हैं।

उच्चतम अवस्था में 'रामायण' ग्रंथ वेदान्त के हर छात्र के लिए एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। जनसामान्य के लिए वह एक पुराण है, अन्यों के लिए एक ऐतिहासिक तथा शेष बचे लोगों के लिए स्मृति-ग्रंथ भी हो सकता है।

परन्तु सूक्ष्मता से अध्ययन करने के फलस्वरूप वह उपनिषद्-तुल्य ग्रंथ के रूप में भी पाया जाता है, यद्यपि उससे श्रेष्ठ न हो, तो भी।

नारद की यह कथा, जिसे हमने इन दिनों पढ़ी अनेक तथ्यों को उजागर करती हैं। वह हमें माया की भ्रमात्मक शक्ति का प्रकाश दिखाती है, आध्यात्मिक पथ पर आने वाले स्थूल एवं सूक्ष्म खतरों से सावधान कराती है, आत्म-विश्लेषण की उपयोगिता, सदा-जाग-

रूकता, अटूट-विश्वसनीयता एवं सच्ची विनम्रता का पाठ भी पढ़ाती है। हमें यह भी विश्वास दिलाती है कि प्रभु ही हमारे आध्यात्मिक मार्ग में हमें पथ-प्रदर्शित करते हैं, सहारा देकर, कभी लेलकर तो कभी मार्ग आलोकित कर तथा उन्नति की ओर, ही अग्रसर करते हैं। 'तलवार की धार' सभी तक पैनी रहती है, जब तुम स्वयं प्रभु का हाथ थामने जाते हो, परन्तु यदि प्रभु ही हाथ थाम ले तो क्या तुम्हें फिर भी शंका है कि वही पैनापन सर्वथा अप्रभावी हो जाता है ?

★

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

१.	एक भक्तिमती महिला	—	इलाहाबाद	५,००० रुपये
२.	एक शुभैषी	—	पुणे	२०० रुपये
३.	श्री एस० के० चक्रवर्ती	—	इलाहाबाद	२७ रुपये
४.	श्री पृथ्वीराज शर्मा	—	टण्डी, राजस्थान	३०० रुपये
५.	श्री दीपक श्रीवास्तव	—	पटना (बिहार)	१०१ रुपये
६.	एक शुभ चिन्तक	—	इलाहाबाद	२५० रुपये
७.	भी० बी० उरकुडे	—	चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)	५० रुपये
८.	श्रीमती शान्ति देवी	—	इन्दौर (मध्य प्रदेश)	१०० रुपये
९.	श्री एस० डी० शर्मा	—	अहमदाबाद	३०१ रुपये
१०.	श्रीमती प्रभा भार्गव	—	बीकानेर (राजस्थान)	२०० रुपये
११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भागव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० ब०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०	श्री राजीव कुमार राजू	—	संदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२.	श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	९८५ रुपये
२३	श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये
२४,	श्री शतदल खान	—	सोनारपुर(पश्चिम बंगाल)	१०० रुपये
२५.	श्री ए० जी० ठगाँवकर	—	यवतमाल	५१ रुपये

निवेदन — १ स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।
२ चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

शिष्यत्व की चार शर्तें

—स्वामी शशांकानन्द
प्राचार्य, समाज सेवक शिक्षण मन्दिर
बेलुड़मठ

स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है, "यदि कोई सत्य की अनुभूति करना चाहता है, यदि वह सत्य को किसी गुरु से प्राप्त करना चाहता हैं तो उसे सच्चा शिष्य होना होगा। शिष्य होना आसान नहीं है। बड़ी तैयारियों की आवश्यकता है; बहुत सी शर्तें पूरी करनी होती हैं। वेदान्तियों ने मुख्य शर्तें चार रखी हैं।"

पहली शर्त

(१) पहली शर्त यह है कि जो शिष्य सत्य को जानना चाहता है, वह इस लोक अथवा परलोक में कुछ प्राप्त करने की सभी इच्छाओं को त्याग दे :

इसलोक में धन, स्त्री, पुत्र, वैभव की इच्छा का परित्याग, परलोक में स्वर्गादि श्रेष्ठ लोकों की कामना का परित्याग करके एक मात्र प्रभु की प्राप्ति की पवित्र कामना से ईश्वर चिन्तन करने वाला व्यक्ति ही शिष्य होने की पहली शर्त पूरी करता है। ऐसे शिष्य के द्वारा मंत्र जपने में गुरु बल कार्य करता है। रामचरितमानस में इस प्रकार का चरित्र मनु जी में मिलता है। वे इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठे थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि जीवन बीत रहा है किन्तु लक्ष्य दूर है।

होइ न विषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुःख लाग जनम गयउ हरि भगति बिनु॥

अर्थात् घर में रहते हुए बुढ़ापा आगया परंतु विषयों में वैराग्य नहीं होता, श्री हरि की भक्ति के बिना ही जीवन चला जा रहा है, इस बात को सोचकर उनके मन में बड़ा दुःख हुआ। तब उनके मन में विषयों के प्रति इतना वैराग्य उदित हुआ कि राजपाट तुच्छ लगने लगा। और अपने पुत्रों को राज्य सौंप कर वे वन को चले गये।

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा।
नारि समेत गवन बन कीन्हा॥

तब जबरदस्ती अपने पुत्र को राज्य देकर राजा मनु ने वन की ओर प्रस्थान किया और वहाँ जाकर घोर तपस्या की।

इन सब इच्छाओं का राजा मनु ने परित्याग क्यों किया? क्या चाहते थे वे? वे चाहते थे परमसत्य के दर्शन।

उर अभिलाष निरन्तर होई।
देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥

मेरे मन में निरंतर एक अभिलाषा थी। कि मैं उन परम प्रभु के दर्शन कर पाऊँ। कौन से प्रभु?

संभु विरंचि विष्णु भगवाना।
उपजहिं जासु अंस ते नाना।

जिन प्रभु के अंश मात्र से विभिन्न ब्रह्मा विष्णु महेश जन्मते हैं।

मनुजी लोक-परलोक की सभी इच्छाओं को त्याग कर परम सत्य परमेश्वर को जानने की लालसा में घोर तपस्यारत थे।

ऐसी लालसा ही प्रत्येक शिष्य के लिए पहली शर्त है।

पुनः देखिए, माता जानकी सोने की लंका में विराजमान हैं। वह लंका बड़ी ही विशाल और अद्भुत थी। हनुमान जी महाराज ने स्वयं पर्वत पर चढ़कर देखा था।

अति उतंग जलनिधि चहुपासा।
कनक कोट कर परम प्रकासा॥

वह किला अत्यन्त ऊँचा है और उसके चारों ओर समुद्र है अर्थात् सब प्रकार से सुरक्षित है। सोने की चार दीवारी से परम प्रकाश हो रहा था। विचित्र मणियों से जड़ित सोने का परकोटा है, उसके अन्दर बहुत से सुन्दर-सुन्दर भवन हैं। अर्थात् धनधान्य सम्पन्न देश है। चौराहे, बाजार, सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं, सुन्दर नगर बहुत प्रकार से सजा हुआ है। अर्थात् व्यवस्था अत्यन्त सुन्दर है। हाथी घोड़े खच्चरों के समूह तथा पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है? अर्थात् परिवहन व्यवस्था अद्भुत है। अनेक रूपों के राक्षसों के दल हैं उनकी अत्यन्त बलवती सेना का वर्णन करना कठिन है।

वन, बाग उपवन, फुलवारी, तालाब कुएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य. नाग, देवताओं और गन्धर्वों की कन्याएँ अपने सौन्दर्य में मुनियों के भी मन को मोहती हैं। अर्थात् लोक-परलोक के सभी वैभवों और भोगों से भरी थी रावण की स्वर्ण लंका।

रावण इस स्वर्ण की लंका का राजा था। हनुमान जी ने देखा कि उसका अद्भुत प्रताप है।

दस मुख सभा दीखि कपि जाई।
कहि न जाई कछु अति प्रभुताई॥
करजोरें सुर दिसिप बिनीता।
भ्रकुटि बिलोकत सकल सभीता॥

—हनुमानजी महाराज को जब बाँधकर रावण के दरबार में ले जाया गया तो उन्होंने रावण की जो प्रतिमा देखी उसके बारे में कुछ कहते नहीं बनता। इतनी प्रभाव शाली थी। देवता और दिक्पाल हाथ जोड़े नम्रता के साथ भयभीत हुए सब रावण की भौंहों को ताक रहे हैं।

अर्थात् सर्वदिग्विजयी रावण जिसने पृथ्वी के राजाओं की तो बात ही क्या स्वर्ग के देवताओं को भी बन्दी बनाकर सभा में भयभीत कर रखा था, महान बल और ऐश्वर्य से युक्त रावण जिसे समस्त भोग्य वस्तुएँ सहज ही उपलब्ध थीं, वही प्रतापशाली रावण माता जानकी के समक्ष खड़ा अपना सर्वस्व अर्पण करने आया था।

कह रावण सुनु सुमुखी सयानी।
मंदोदरी आदि सब रानी॥
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा।
एक बार बिलोकु मम ओरा॥

रावण ने कहा, "हे सुमुखी। मैं प्रण करके कहता हूँ कि मंदोदरी आदि मेरी सब रानियों को मैं तुम्हारी अनुचरी बना दूँगा यदि एक बार तुम मेरी ओर देख भर लो।

साधक के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब वह अपने को कुबेर की धन राशि और समस्त जगत के वैभव, स्वर्ग के सुख अपने दरवाजे पर खड़े देखता है जो उसके उद्देश्य और सत्य की खोज, ईश्वर प्राप्ति या ईश्वर भक्ति से विमुख करना चाहती है। नचिकेता भी इसी अग्नि-परीक्षा के सम्मुखीन हुए थे जब यमराज ने उन्हें कुबेर की धनराशि, दीर्घायु, स्वर्गादि सुखों के दान का प्रस्ताव रखा था।

यह एक ऐसा क्षण है जो साधक को जीवन में सफलता और असफलता के दो पथों के बीच खड़ा कर देता है। यदि कोई सफलता चाहता हो तो उसके लिए स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं कि उसे लोक और परलोक में प्राप्त होने वाले सभी सुखों की कामना का परित्याग करना चाहिए केवल परित्याग ही नहीं उन्हें घृणा की दृष्टि से देखना चाहिए, काक-विष्ठा के समान फेंक देना चाहिए। उसे माता जानकी की भाँति त्रिलोक विजयी रावण, उसकी सोने की लंका, धन वैभव सब को तिनके के समान फेंक देना चाहिए।

माता जानकी ने तिनके की ओट से रावण को कहा था—

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥

अरे रावण। क्या जुगनु के प्रकाश में कमल का फूल खिलता है? अर्थात् सीता वह कमल का फूल है

जो श्रीराम रूपी सूर्य के उदित होने पर ही खिलता है। मानो माता जानकी रावण से कहना चाहती है कि हे रावण ! तू, तेरा धन वैभव, यह सोने की लंका, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ, अतुलित बल; भयभीत देवताओं सुन्दरियों और वीर योद्धाओं से भरी सभा और तेरा सारा प्रभुत्व श्रीराम रूपी सूर्य के सामने जुगनू के सामन हैं अर्थात् बहुत ही क्षुद्र हैं।

और तेरी पटरानी होने का लोभ किसी और को दिखाना। मैं जिस राम की पटरानी हूँ उसके सामने तू एक तुच्छ जीव है।

इस प्रकार ठुकराये जाने पर रावण क्रोध में तिल मिला उठा और उसने सीता जी के समक्ष दो पथ रखे।

(१) सीता तैं मम कृत अपमाना।
कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥

एक तो यह कि सीता, तूने मेरा अपमान किया है मैं तेरा सिर इस कठिन कृपाण से काट दूँगा।

(२) नहिं त सपदि मानु मम बानी।
सुमुखि होति न त जीवन हानी॥

नहीं तो तू मेरी बात शीघ्र ही मान ले, मेरी पटरानी बन जा और नहीं तो तू मृत्यु स्वीकार कर।

माता जानकी निर्भय थीं। वे या तो श्रीराम को ही चाहती थीं ऐसा न होने पर मृत्यु ही उन्हें पसन्द थी। इसलिए उन्होंने कहा :—

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।
गुनु सठ उस प्रवान पन मोरा॥

रे शठ, दस ग्रीव ! या तो श्यामल कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी की सूँड के समान मेरे प्रभु की भुजा ही मेरे कण्ठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। यही मेरा सच्चा प्रण है। श्रीराम के अतिरिक्त सीता माता के जीवन में तीनों लोकों के वैभव फीके ही थे। अतः एक शिष्य को सीता माता की तरह लोक-परलोक के सभी सुखों का परित्याग कर एकमात्र ईश्वर प्राप्ति ही काम्य वस्तु होनी चाहिए।

श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव भी माँ भवतारिणी से प्रार्थना करते थे, माँ मैं तुम्हारी शरण हूँ। तुम्हारी शरण हूँ। मुझे देह सुख नहीं चाहिए, (अणिमादि) अष्ट सिद्धियाँ नहीं चाहिए। केवल इतना ही करो कि तुम्हारे चरण कमलों में शुद्धा भक्ति हो, निष्काम अमला अहैतुकी भक्ति। और मैं कभी भी तुम्हारी भुवन मोहिनी माया मुग्ध न होऊँ। तुम्हारी माया के संसार काम-कांचन पर मेरा कभी भी प्रेम न हो। माँ ! तुम्हें छोड़कर और मेरा कोई भी नहीं है। मैं भजन हीन, साधन हीन, ज्ञान हीन भक्ति हीन—कृपा करके मुझे अपने श्री चरणों में भक्ति दो।"

शिष्य की पहली शर्त पूरी करने की योग्यता प्राप्त करने के लिए यह प्रार्थना बड़ी ही उपयुक्त है।

दूसरी शर्त

स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं कि वेदान्तियों ने शिष्य होने की दूसरी शर्त यह बतायी है कि शिष्य को अपनी अंतरिन्द्रियों और बहिरिन्द्रियों को नियंत्रित करने में समर्थ होना चाहिए और अन्य आध्यात्मिक गुणों में दृढ़ होना चाहिए।

मानव मन तो एक जल-प्रवाह के समान है और उसकी स्वाभाविक गति सब समय ढलान की ओर (विषयों की ओर) ही होती है। इस मन के चारों ओर अनेक रास्ते हैं जिनके द्वारा वह बहता ही रहता है अर्थात् यह मन ज्ञानेन्द्रियों के मार्ग से प्रवाहित होता है और कर्मेन्द्रियों को उसी प्रकार से चालित करता है जैसे एक पनचक्की में जल प्रवाह चक्की को चालित करता है। कर्मेन्द्रियाँ विषय भोगों के सुख को ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से मन तक पहुँचा देती हैं। इस प्रकार यह पराञ्चिखानि मन सदा ही ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के योग से भोगों में आसक्त रहता है।

विभिन्न विषयों की ओर दौड़ने वाला मन ऐसा बिखरा रहता है जैसे सरसों की पोटली फट जाने पर

सरसों चारों ओर फैल जाती है। ऐसे बिखरे हुए मन में दम नहीं रहता। व्यवसायात्मिका बुद्धि वाला व्यक्ति सूक्ष्मातिसूक्ष्म भगवद् तत्त्व का चिन्तन नहीं कर सकता। यदि कोई साधक इस प्रकार के मन से ईश्वर चिन्तन करे तो निराशा ही हाथ लगेगी। इसलिए श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था, "व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।" बिखरे हुए मन को एकाग्र करना अति आवश्यक है। विभिन्न विषयों से अपनी अंतरिन्द्रियों और बहिरिन्द्रियों को नियन्त्रित कर के एक मात्र ईश्वर प्राप्ति की कामना करने से मन भटकता नहीं ऐसे व्यक्ति की कर्मेन्द्रियाँ स्थिर होकर ईश्वर प्राप्ति के साधन करते हैं और उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ ईश्वर सम्बन्धी अनुभूति।

रामचरितमानस में श्री भरतलाल जी का चरित्र तो देखिए, बाह्येन्द्रियों और अन्तरीन्द्रियों पर उन्होंने सुन्दर संयम का आदर्श रख दिया।

बाह्येन्द्रिय संयम

वन में श्रीराम के साथ भेंट करके उन्हें लौटाने में असफल होकर उनकी पादुकाएँ माथे पर रखकर भरत अयोध्या लौट आये और श्रीराम की पादुकाएँ सिंहासन पर बिठाकर राज्य चलाने लगे किन्तु स्वयं जो तपोमय जीवन बिता रहे थे वह अतुलनीय है। देखिए।

राम मातु गुर पद सिरु नाई।
प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥

नंदि गाँव करि परन कुटीरा।
कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥

श्रीराम जी, माता कौसल्या और गुरु जी के चरणों में प्रणाम कर और प्रभु के चरण पादुकाओं की आज्ञा पाकर धर्म की धुरी धारण करने में धीर भरतजी ने नन्दीग्राम में पर्णकुटी बनाकर उसी में वास किया।

जटाजूट सिर मुनि पट धारी।
महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥

असन बसन बासन ब्रत नेमा।
करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥

सिर पर जटाजूट और शरीर में मुनियों के वल्कल वस्त्र धारण कर पृथ्वी को खोदकर उसके अंदर कुशासन बिछाया। भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत नियम सभी बातों में ऋषियों के कठिन धर्म का प्रेम सहित आचरण करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी।
मन तन बचन तजे तिन तूरी॥

अवध राज सुर राजु सिहाई।
दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥

—गहने कपड़े और अनेकों प्रकार के भोग सुखों को मन तन और वचन से प्रतिज्ञा करके त्याग दिया। जिस अयोध्या के राज को देवराज इन्द्र सिहाते थे और दसरथ जी की सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे,

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

रमा बिलासु राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़ भागी॥

—उसी अयोध्या पुरी में भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं जैसे चम्पा के बाग में भौंरा। भगवान राम के प्रेमी बड़ भागी पुरुष लक्ष्मी के विलास (भोगैश्वर्य) को वमन की भाँति त्याग देते हैं फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई।
घटइ तेजु बलु मुख छबि सोई॥

—भरतजी का शरीर दिनों दिन दुर्बला होता जाता है। तेज बल और चेहरा भी सूखता जाता है।

बाह्येन्द्रियों पर इतना कठोर संयम रखने के कारण शरीर को कष्ट होते हुए भी उनके मन में कष्ट नहीं था। अन्तरीन्द्रिय संयमित होकर श्रीराम के प्रेम में ऐसी एकाग्र हो गयीं कि वे केवल श्रीराम के प्रेम में

पियूष का ही पान करती रहती थी। गोस्वामीजी कहते हैं,

नित नव राम प्रेम पनु पीना।
बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥

श्रीराम के प्रेम का प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्म का दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है अर्थात् आनन्द में है।

पुलक गात हियँ सीय रघुबीरू।
जीह नामु जप लोचन नीरू॥

—शरीर पुलकित है, हृदय में श्री सीताराम जी हैं। जीभ राम नाम जप रही है, नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे हैं।

इस प्रकार के लक्षण प्राप्त होने पर शिष्य होने की दूसरी शर्त पूरी होती है।

तीसरी शर्त

स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं कि वेदान्त के अनुसार शिष्य की तीसरी शर्त है मुक्ति की तीव्रतम आकांक्षा।

किसी शिष्य ने अपने गुरुदेव से पूँछा, 'ईश्वर दर्शन कब होता है?' उन्होंने शिष्य के बाल पकड़कर उसे नदी में डुबो दिया। शिष्य जब स्वाँस जुटाने के लिए छटपटाता हुआ जल के बाहर निकल आया तब गुरुदेव ने कहा, 'ईश्वर का दर्शन तब होगा जब उसे पाने के लिए इसी प्रकार से छटपटाओगे।'

वेदान्तसागर में भी वर्णन आता है कि ब्रह्मज्ञान का अधिकारी तो वह हो सकता है जिस जीव की अवस्था इस प्रकार हो,

'जननमरणादि संसारानल संतप्तो दीप्त शिरा जलराशिमिव।

अर्थात् जन्म मरण, राग-द्वेषादि सांसारिक कष्टों से पीड़ित होने के कारण, जैसे भयानक गर्मी से अत्यन्त संतप्त मनुष्य अपनी व्याकुलता शान्त करने के लिए जलाशय की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार वह भी सद् गुरु देव की खोज में दौड़ता है। अर्थात् जो मनुष्य ब्रह्मलाभ के बिना, ईश्वर प्राप्ति न होने पर अत्यन्त व्याकुल हो उठता है; जिसमें मुक्ति की कामना अत्यन्त तीव्र हो उठती है, वही व्यक्ति सद्गुरु के पास उपदेश लेने का अधिकारी होता है। रामचरितमानस में अवतारवाद को स्वीकार किया है अतः ब्रह्म जिज्ञासा और श्रीराम की दिव्य लीला को तत्त्व से जानने की पिपासा को एक ही माना है क्यों कि परब्रह्म परमात्मा ही श्रीराम आदि अवतार धारण करके इस धराधाम पर नर लीला करते हैं।

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥
व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगतिबस कौसल्या के गोद॥

अर्थात् जो सर्वव्यापक निर्गुण, निराकार ब्रह्म हैं वे भगवान ही वेद पृथ्वी, देवताओं और संत जनों के हितार्थ प्रेम और भगति के वश अपनी इच्छा से माया अर्थात् तीन गुणों से बना शरीर धारण कर माता कौसल्या की गोद में भगवान राम बने हैं।

रामचरितमानस के अनुसार तीसरी शर्त वह पूरी करता है जो श्रीराम की प्राप्ति के लिए अत्यन्त व्याकुल हो जाए। जिसे श्रीराम के बिना और कुछ भी न भाए। मानो श्रीराम के बिना उसका जीवन धारण असह्य हो गया है। इस प्रकार के विरह का दर्शन हमें श्रीरामकृष्ण देव के जीवन में देखने को मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव के साधक जीवन में भगवद् दर्शन की तीव्र व्याकुलता का अनपम उदाहरण देखने को मिलता है। माँ भवतारिणी के दर्शनों की आकांक्षा में वे दिन रात 'माँ' 'माँ' कहकर रोते रहते थे। आँसुओं से तकिया भी भींग जाता था। संध्या समय गंगा किनारे जाकर मिट्टी में छटपटाते हुए वे कहते, 'माँ। जीवन का और एक दिन चला गया पर तेरा दर्शन नहीं हुआ। माँ। तूने रामप्रसाद को दर्शन दिए, क्या मुझे नहीं देगी?' इत्यादि वे जब गंगा किनारे 'माँ। माँ।' कहकर रोते थे तो उनका रूदन दर्शकों से देखा नहीं जाता था। वे इस

प्रकार रोते मानो उनको जन्म देने वाली अपनी माँ मर गयी हो। रोते-रोते उनका स्वांस भी अवरुद्ध हो जाता था। इतना ही नहीं एक दिन भगवद् विरह में व्याकुल श्रीरामकृष्ण देव के अवतारिणी के मन्दिर में लटकती हुई खड्ग उठा लिया और कहा, 'माँ! या तो मुझे इसी क्षण दर्शन दे नहीं तो मैं और जीवित नहीं रह सकता,' ऐसा कहकर अपनी गर्दन पर खड्ग उठा लिया। तब कहीं माँ ने दर्शन दिया॥

रामचरितमानस में श्रीराम को पाने के लिए इस प्रकार की तीव्र आकांक्षा के चरित्र देखने को मिलते हैं। राक्षसराज रावण की बन्दिनी माता जानकी को अशोक वाटिका में वृक्ष के तले जिस अवस्था में हनुमान जी ने देखा, वह इस प्रकार है :—

बैठहिं बीति जात निसि जामा॥
कृसतनु सीस जटा एक बेनी।
जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥

सिर पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

रात्रि के चारों पहर बैठे बीत जाते हैं, उन्हें नींद नहीं आती। शरीर दुबला हो गया है। सिर पर जटाओं की एक वेणी है अर्थात् शरीर की ओर कोई ध्यान नहीं है। मन तो केवल भगवान् श्रीराम के चिंतन में डूबा हुआ है। श्रीराम के गुण-समूहों का स्मरण करते हुए ही दिन और रात न जाने कब आते हैं और चले जाते हैं। माता जानकी के नेत्र अपने चरणों की ओर ही देख रहे हैं अर्थात् वे नेत्रों से केवल अपने हृदय में स्थित भगवान् राम के अतिरिक्त और कुछ भी देखना नहीं चाहती हैं। भगवान श्रीराम को अपने निकट न देखकर वे दुख समुद्र में डूबी रहती हैं।

उसी प्रकार भवबन्धन रूपी रावण की लंका में बद्ध जीव भी जब भवविरह की ज्वाला में जलता हुआ छटपटाता है, रात और दिवस केवल एक ही चिन्ता में रहता कि प्रभु से मिलन कैसे होगा। बाह्य जगत में कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह चारों ओर मानो टकटकी लगाए बैठा है मानो कहता हो" कोई कहियो रे प्रभु आवन की" वही तो उचित समय है। तब श्री हनुमन्त लाल जी की भाँति श्री गुरुदेव ही भगवान का संदेश ले आते हैं, हे साधक। भगवान तुम्हें इस भव-बन्धन से छुड़ाकर अपने दर्शन देने ही वाले हैं।"

हनुमान जी महाराज ने पुनः देखा माता जानकी त्रिजटा से कह रही थीं,

तजौं विपति संगिनि तैं मोरी॥

—हे माता, तू मेरी विपत्ति की साथी है। अब मुझे इस विपत्ति से बचा। जल्दी कोई उपाय कर। हनुमान जी महाराज सोच ही रहे थे कि इस समय क्या विपत्ति है? माता जानकी ने कहा—

तजौं देह करु बेगि उपाई।
दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥
आनि काठ रचु चिता बनाई।
मातु अनल पुनि देहि लगाई॥

'हे माता। तू जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। विरह की पीड़ा असत्य हो उठी है अब और सहा नहीं जाता। अब काठ लाकर मेरी चिता सजा दे और फिर उसमें आग लगा दे।'

साधक के जीवन में इस प्रकार की तीव्र आकांक्षा का उठना अनिवार्य है, 'या तो भगवद् प्राप्ति हो या जीवन नहीं रखूँगा।' भगवान् बुद्धदेव अपने आसन पर बैठे और मन में यह निश्चय किया कि या तो मन्त्र को साध लूँगा नहीं तो शरीर ही छोड़ दूँगा। साधक की ऐसी अवस्था सुनकर ही भगवान् का हृदय गलित हो उठता है। उन्हें सबसे पहले भक्त के प्राण बचाने की चिंता लगती है। अतः हनुमन्त लाल जी के लौटते श्री राम ने सब गाथा सुनी तो पूछा,

"कहहु तात केहि भाँति जानकी।
रहित करति रच्छा स्वप्रान की॥

—हे तात। कहो सीता किस प्रकार रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती हैं? हनुमान जी महाराज ने कहा;

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहि बाट॥

—हे प्रभो माता जानकी की रक्षा तो आपका नाम ही करता है। आपका नाम रात दिन पहरा दे रहा है, आपका ध्यान ही किवाड़ है, (वे अपने) चरणों में लगाए रखती हैं, यही ताला है। फिर प्राण जाएँ तो किस मार्ग से जाएँ।

निमिष निमिष करुणा निधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥

—हे करुणा निधान। उनका एक-एक पल कल्प के समान बीतता है। अतः हे प्रभो। तुरन्त चलिए और अपनी भुजाओं के बल से दुष्टों के दल को जीत कर सीताजी को ले आइए।

इसी प्रकार की चरम व्याकुलता हमें श्री भरत लाल जी के चरित्र में भी दिखायी देती है। हनुमान जी महाराज भगवान राम के अयोध्या लौटने की सूचना देने के लिए अयोध्या भेजे गये। अयोध्या में जाकर उन्होंने श्रीभरत जी को श्रीराम की पादुकाओं के सामने इस प्रकार देखा :—

बैठि देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात॥

—भरत जी का शरीर एक दम दुर्बल हो चुका है और सिर पर जटाएँ इतनी बढ़ गईं मानो मुकुट पहने हों। कुशासन पर बैठे हुए राम! राम! रघुपति! इस प्रकार निरन्तर भगवान का नाम जप रहे हैं और नेत्रों से अनवरत जल की धारा बह रही है। भरत जी की दशा बड़ी ही शोकमयी थी। वे विचार कर रहे थे।

रहेउ एक दिन अवधि अधारा।
समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ।
जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥

—प्राणों की आधार रूप अवधि का एक ही दिन शेष रह गया अर्थात् श्रीराम १४ वर्ष समाप्त होते ही आ जायेंगे, इसी आशा में प्राण जी रहे थे। किन्तु अब तो एक ही दिन बाकी है पर उनके आने का कोई लक्षण ही नहीं दीख रहा। ऐसा सोचकर भरत जी के मन में अपार दुख हो रहा था। किस कारण से प्रभु नहीं आए? मेरी कुटिलता के कारण कहीं मुझे भुला तो नहीं दिया?

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना।
अधम कवन जग मोहि समाना॥

—भरत जी ने सोचा यदि अवधि बीत जाने पर भी श्रीराम नहीं आये तो मैं प्राण नहीं रख पाऊँगा।

रामबिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

—श्रीरामजी के विरह-सागर में भरत जी का मन डूब रहा था, उसी समय पवनपुत्र हनुमान जी ब्राह्मण का रूप धारण कर इस प्रकार आ गये मानो डूबते हुए को बचाने के लिए नाव आ गयी हो और उन्होंने कहा,

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती।
रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता।
आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

अर्थात्—जिनके विरह में आप दिन-रात सोच करते हैं और जिनके गुण समूहों की पंक्तियों को आप निरन्तर रटते रहते हैं, वे ही रघुकुल तिलक, सज्जनों को सुख देने वाले देवताओं तथा मुनियों के रक्षक भगवान श्रीराम सकुशल आ गये हैं।

श्रीराम से मिलन की तीव्र आकांक्षा यदि भरत जी महाराज की भाँति हो या माता जानकी की भाँति हो तब ही एक साधक प्रभु मिलन की आशा के संकेत पाता है। और वे संकेत देने हनुमान जी की भाँति श्री गुरुदेव भगवान भगवद् विरह में छटपटाते हुए शिष्य के समक्ष उपस्थित होते हैं।

चौथी शर्त

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि वेदान्त के अनुसार शिष्यत्व की चौथी और अन्तिम शर्त है 'सत् और असत् का विवेक'। केवल ईश्वर ही सत्य वस्तु है, सर्वदा मन उसकी ओर लगा रहे, उसी में रमण रहे, ईश्वर ही है और उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। ईश्वर के अतिरिक्त जो कुछ दीखता है, वह भ्रम है—मिथ्या है। संसार की कोई भी इच्छा भ्रम है, इसलिए कि संसार मिथ्या है। जब तक और सब मिथ्या—जैसा वह वास्तव में है, प्रतीत न होने लगे, मन को केवल ईश्वर के प्रति ही अधिकाधिक अनुभव शील होना चाहिए।

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता ते जड़ माया।
भास सत्य इव मोह सहाया॥

अर्थात् यह जगत् प्रकाशित है और श्रीराम प्रकाशक हैं। श्रीराम ग्यान और गुणों के धाम तथा माया से परे हैं। श्रीराम की सत्यता से ही जड़ माया भी ऐसी लगती हो मानो सत्य हो।

विवेक सत्य को इस जड़ माया से पृथक् करके दर्शाता है। अर्थात् अध्यात्म मार्ग में विवेक एक आवश्यक चरण है। साधारण जीव अपने को संसार में इतना अधिक फंसा कर रखते हैं कि उन्हें कुछ विचार करने का अवकाश ही नहीं। जो दीखता है उसे ही वे सत्य मानता है क्यों कि वह इन्द्रियगम्य है। इन्द्रियातीत अनुभूति की तो वह कल्पना ही नहीं कर सकता अतः वह उसके लिए असत्य है, कल्पित है। इसीलिए सांसारिक भोग सुखों में डूबा हुआ पशुवत जीवन को ही जीवन समझता है। खाना-पीना, सोना जागना, जन्म लेना, बड़ा होना, गृहस्थी करना, संतान उत्पन्न करना, सन्तान का पालन पोषण करना, बूढ़ा होना और मर जाना मानो यही जीवन की सार्थकता है।

कुछ लोग हैं जो सामाजिक, राजनीतिक जैसे अन्यान्य क्षेत्रों में कुछ करना चाहते हैं किन्तु वहाँ भी व्यक्तिगत स्वार्थ या जातिगत स्वार्थ के लिए कलह-युद्ध में रत रहते हैं जिसके कारण हिंसात्मक प्रवृत्ति में रत रहने के कारण वे भी इस जीवन की सार्थकता से अनभिज्ञ रहते हैं।

विवेक हीनता के कारण ही वे सत् का परित्याग कर असत् को ही ग्रहण करते हैं—मणि न पहचानने के कारण काँच के टुकड़ों को पकड़े रहते हैं और बार-बार जन्म लेते हैं और मरते हैं। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं :—

आकर चार लाख चौरासी।
योनि भ्रमत यह जिव अविनासी॥

शुद्ध-बुद्ध-मुक्त अविनाशी होते हुए भी यह जीव अविवेकी होने के कारण अपने अविनाशी स्वरूप को न जानने के कारण चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। अनेक जन्मों की सुकृति के फलस्वरूप यदि कभी अहेतुकी करुणा सिन्धु की दृष्टि पड़ जाए—

"कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥"

तो कभी करुणा करके हेतुरहित, स्नेहवश प्रभु उसे यह मनुष्य योनि देते है।

अत्यन्त दुर्लभ, साधना के धाम और मोक्ष के द्वार स्वरूप इस मानव देह को प्राप्त करने के लिए तो देवता गण भी तरसते हैं।

बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन गावा॥

इन मनुष्य देह को पाना बड़े ही भाग्य की बात है, यह तो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, ऐसा सब शास्त्रों में गाया गया है। क्योंकि यही एक मात्र योनि है जिसमें कर्म करने का अधिकार है, सत्संग सम्भव है एवं विवेक उत्पन्न हो सकता है।

बिनु सत्संग विवेक न होई।
रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥

श्रीराम यदि कृपा करें तो मानवदेह प्राप्त हो, [illegible] प्राप्त कर सत्संग हो सके और सत्संग के प्रभाव [illegible] विवेक की प्राप्ति हो सके।

हे पाठकगण। आप सभी को मानव देह प्रदान कर श्रीराम ने कृपा तो कर दी अब आप मोक्ष कामना से जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति की इच्छा से सत्संग करके विवेक जाग्रत कीजिए। 'अस बिचारि करिए सतसंगा।'

विवेक किसे कहते हैं ?

'नित्यानित्य वस्तु विवेक।' नित्य और अनित्य वस्तु का विचार करना ही विवेक है।

जड़ चेतन गुन दोषमय विस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार॥

—'विधाता ने इस जड़ चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है। किन्तु सन्तरूपी हंस दोषरूपी जल को छोड़कर गुणरूपी दूध ही ग्रहण करते हैं।' इसे ही विवेक कहते हैं।

अस विवेक जब देइ विधाता।
तब तजि दोष गुनहिं मन राता॥

जब विधाता इस प्रकार का विवेक देते हैं, तब दोषों को छोड़कर मन गुणों में अनुरक्त होता है—विषयों का परित्याग कर ब्रह्मानन्द में डूबने की सामर्थ्य प्राप्त करता है।

वेदान्त ग्रन्थ विचार सागर में कहा है—

अविनाशी आतम अचल
जग तातें प्रतिकूल।
ऐसो ज्ञान विवेक है
सब साधन को मूल॥

अर्थात्—सब साधनों का मूल तो विवेक है जो यह ज्ञान कराता है कि आत्मा अविनासी और अचल है तथा जगत् नश्वर और चलायमान है। श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्याय में १६ से २०वें श्लोक तक भगवान ने नित्यानित्य वस्तु का ज्ञान कराया है।

विवेक के अभाव में अर्जुन ने अपने शरीरधारी बन्धु-बान्धवों को ही सत्य समझा था। उनके शरीर के साथ उनका भी नाश होगा, ऐसा मान लिया था। इस मोह के कारण ही वह शोकातुर होकर अनात्मा को सत्य प्रमाणित करने की निरर्थक चेष्टा करता रहा। भगवान् श्रीकृष्ण ने रोग पहचाना और सबसे पहले ही इस मोह को भंग करने के लिए उसे नित्यानित्य वस्तु का ज्ञान कराया।

विवेक के द्वारा साधक यह समझ लेता है कि एक मात्र ब्रह्म ही सत्य है, नित्य है और जगत असत्य एवं अनित्य। यो वै भूमा तदमृतम् यदल्पं तन्मर्त्यम्। जो नित्य एवं अनन्त है वही अमृत है, सुख है और जो अनित्य है, अल्प समय के लिए है; वह मृत्यु है, दुःख है।

अद्वैत वेदान्त के दृष्टिकोण से ब्रह्म ही सत्य है, और जगत असत्य, अनित्य, और स्वप्नवत मिथ्या है। यह ज्ञान ही विवेक है और इसके विपरीत अविवेक। जब तक साधक 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म', यह अनुभूति नहीं कर लेता तब तक उसे जगत् को स्वप्नवत मिथ्या मानकर ब्रह्म-चिन्तन का आश्रय लेना चाहिए।

रामचरितमानस में इसी ब्रह्म को निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार एवं सगुण-साकार इन तीनों रूपों में स्वीकार किया है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम सगुण-साकार हैं।

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानंद परेस पुराना॥

श्रीराम तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्द स्वरूप, परात्पर प्रभु और पुराण पुरुष हैं, इस बात को सारा जग जानता है।

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिव नायउ माथ॥

भगवान शंकर ने स्वयं उन्हें पुराण पुरुष, प्रकाश के भण्डार, सर्व रूपों में प्रकट, जीव माया और जगत् के स्वामी रघुकुल शिरोमणि भगवान् राम को अपना स्वामी

जानकर मस्तक नवाया था।

अतः मानसप्रेमियों के लिए भगवान् राम नित्य, सत्य हैं और जगत् अनित्य एवं असत्य। इसीलिए भगवान शिवजी ने पार्वतीजी से कहा था -

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरिभजन जगत सब सपना।

'हे उमा! भगवद् भजन के अतिरिक्त सारा जगत एक स्वप्नमात्र है, यह मेरा अनुभव हैं।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जो जगत दीखता है वह है ही नहीं। वास्तव में अविवेकी को भ्रमवश यह जगत अपने भासमान स्वरूप में दिखायी देता है। और विवेकी उसी जगत् को ईश्वर स्वरूप देखता है अर्थात् ईश्वर ही जीव जगत के रूप में दिखायी देते हैं। दृष्टान्त स्वरूप समझ लीजिए जैसे साधारण खरीददार सोने का हार, कंगन, झुमकी इत्यादि देखता है जबकि सुनार केवल कसौटी पर सोना ही देखता है; जैसे खरीददार तो कमीज, कुर्ता, धोती, पाजामा आदि देखता है पर जुलाहा तो सूता ही देखता है। ठीक उसी प्रकार जीव, जगत् आदि तो साधारण अविवेकी मनुष्य ही देखता है, विवेकी तो इन सब के प्रकृत स्वरूप ब्रह्म को ही देखता है। इसी दृष्टि वाले भगवान् शंकर माँ पार्वती से कहते हैं—

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी।
सर्व रहित सब उर पुरवासी॥

श्रीराम ही ब्रह्म हैं, चिन्मय (ज्ञानस्वरूप) हैं, अविनाशी हैं, सबसे रहित और सबके हृदयरूपी नगरों में निवास करने वाले हैं।

देसकाल दिसि बिदिसिहु माहीं।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

अर्थात् देश, काल, दिशा और विदशा में क्या कहीं ऐसी जगह है जहाँ प्रभु न हों। अर्थात् वे ही सब कुछ भास रहे हैं। इसीलिए भगवान शंकर ने देवताओं के समाज में यह घोषणा की थी---

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेमतें प्रगट होहिं मैं जाना॥
अग जगमय सब रहित बिरागी।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

यह मेरी अनुभूति है कि भगवान् सर्वत्र, समानरूप से व्यापक हैं साधारणतया अप्रकट रहने पर भी प्रेम से प्रकट होते है। वे अव्यक्तरूप से सर्वत्र विराजमान हैं किन्तु प्रेम से उसी प्रकार प्रगट होते हैं। जैसे काष्ठ में अव्यक्तरूप से विराजमान अग्नि अरणिमन्थन से प्रकट हो जाती है।

अविवेकी ऐसा न जानते हुए ही जगत देखता है और उसके कारण राग, द्वेष, सुःख आदि भोगता रहता है और सर्वघटों में विराजमान ईश्वर से शत्रुता कर उसे कहीं और खोजता है किन्तु विवेकी पुरुष तो सारे जगत् में ईश्वर को प्रणाम करता है।

सियाराममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

राम चरितमानस में गोस्वामीजी ने दो चरित्रों के द्वारा विवेकी अविवेकी, दोनों ही दृष्टियों का सुन्दर चित्रण किया है। एक ने श्रीराम को अनित्य जाना और दूसरे ने नित्य। दोनों ही श्रीराम के अत्यन्त प्रेमी हैं परन्तु एक की दृष्टि में वे जागतिक सम्बन्धी, अपनी ही सौत कौशल्या के पुत्र दशरथ नन्दन राम हैं तो दूसरे की दृष्टि में इष्टदेव भगवान। महारानी कैकयी श्रीराम को पुत्र के नाते प्रेम करती थी, उनकी दृष्टि में वे एक राजकुमार ही थे इसीलिए जैसे ही उनके राज्याभिषेक की सूचना मिली वे बड़ी ही आनन्दित हुई किन्तु मन्थरा के कुचक्र ने उनमें भेद की सृष्टि कर दी और तब वे भरत के लिए राज्य माँग बैठीं और राम के लिए वनवास क्योंकि उन्होंने राम को नित्य सत्य न मानकर अयोध्या के राज्य धन सम्पत्ति और राजमाता कहाने के सम्मान

को ही सत्य माना अतः द्वेष, ईर्ष्या, राग, क्रोध, अहंकार सभी का शिकार बन अनर्थ कर बैठीं। किन्तु भरत जी की दृष्टि में श्रीराम एक राजकुमार नहीं थे, केवल बड़े भ्राता भी नहीं थे वरन् अन्तर्यामी प्राणों के प्राण उनके सर्वस्व और स्वामी थे।

सरूज सरीर बादि बहु भोगा।
बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा॥
जायँ जीव बिनु देह सुहाई।
बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥

भरत जी महाराज कहते हैं कि जिस प्रकार रुग्ण शरीर के लिए नाना प्रकार के भोग व्यर्थ हैं, श्री हरि की भक्ति के बिना जप और योग व्यर्थ है, जीव के बिना सुन्दर देह व्यर्थ है, वैसे ही श्रीरघुनाथ जी के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ ही है। 'हित हमार सियपति सेवकाई।' मेरा कल्याण तो सीतापति भगवान् राम की सेवा में ही है। अर्थात् उन्होंने अयोध्या का राज्य, माता कैकयी का प्रेम धन वैभव सब को श्रीराम के लिए तिनके की भाँति फेंक दिया क्योंकि उन्होंने श्रीराम को सत्य माना बाकी सब को स्वप्नवत् मिथ्या।

इस प्रकार शिष्य यदि विवेकी हो जाए और असत्य का परित्याग कर सत्य वस्तु की प्राप्ति के लिए व्याकुल हो तब ही वह वेदान्त के अनुसार शिष्य की चौथी शर्त को पूरी करता है।

इन चारों शर्तों के पूरे होने पर गुरु शिष्य को स्वीकार करते हैं। ★

स्वामी तपस्यानन्दजी महाराज

बड़े गहरे दुःख के साथ हम सूचित कर रहे हैं कि रामकृष्ण मठ और मिशन के परम उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी तपस्यानन्दजी महाराज वृहस्पतिवार, ३ अक्टूबर, १९९१ को ६·३२ सायंकाल मद्रास में ब्रह्मलीन हो गये। वे ८७ वर्षों के थे।

स्वामी तपस्यानन्द के बचपन का नाम के० पी० बालकृष्ण मेनन था। उनका जन्म केरल के ओट्टापालम में सन् १९०४ ई० में हुआ था। बचपन में ही वे श्रीरामकृष्ण के उपदेशों से परिचित हुए थे और सन् १९२४ ई० में उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव के प्रत्यक्ष शिष्य स्वामी शिवानन्दजी महाराज (महापुरुष महाराज) से मंत्र दीक्षा ली थी। एम० ए० करने के बाद उन्होंने १९२६ में रामकृष्ण मठ मद्रास में अपना योगदान दिया। १९२८ में स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने उन्हें ब्रह्मचर्य की और १९३२ ई में संन्यास की दीक्षा दी। ब्रह्मचारी के रूप में उन्हें पूर्णचैतन्य का नाम दिया गया।

विभिन्न पदों पर वे रामकृष्ण मठ में कार्य करते रहे। वे वेदान्त केसरी (अंग्रेजी पत्रिका) के सम्पादक थे। फिर १९४० ई० में वे रामकृष्ण आश्रम, त्रिवेन्द्रम के सचिव हुए और इस पर तीस वर्षों तक रहकर वहाँ अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। १९६५ में वे रामकृष्ण मठ के न्यासी और प्रबंध समिति के सदस्य निर्वाचित हुए। १९८५ ई० में वे रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए। अंत तक वे उस पद पर बने रहे।

उनकी कई पुस्तकें तमिल, तेलुगु और अंग्रेजी में प्रकाशित हैं जो काफी विख्यात हैं। उन्होंने तमिल में 'रामकृष्ण विजयम्' पत्रिका के प्रकाशन में रुचि दिखायी। आज उसके ६०,००० ग्राहक हैं।

उनके रामकृष्ण धाम वासी हो जाने से न केवल रामकृष्ण संघ बल्कि सम्पूर्ण भारत वर्ष को एक अपूरणीय क्षति हुई है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव से हमारी आन्तरिक प्रार्थना है कि वे उनकी आत्मा को अक्षय अखण्ड शान्ति प्रदान करें।

हरि ॐ रामकृष्ण !

कुंए का मेढ़क

शिकागो धर्म महासभा में एक दिन एक घटना हुई। विभिन्न धर्मों के वक्ता उठकर अपने धर्म के गौरव का बखान और शेष सभी धर्मों की निंदा करनी शुरू कर चुके थे। इसी विषय पर उन सब में वाद-प्रतिवाद हो रहा था। तब स्वामीजी उठे और उन्होंने समस्त सभा को यह कहानी सुनायी। इससे लज्जित होकर सभी वक्ता चुप होकर बैठ गये थे।

समुद्र से कुछ दूरी पर एक कुंआ था। उसमें एक मोटा सा काला मेढ़क निवास करता था। उसका जन्म कुंए में ही हुआ था। तब से वह वहीं रह रहा था। वह कभी भी बाहर नहीं आया था। बाह्य जगत् कैसा है इसकी जानकारी उसे नहीं थी। तब भी वह अपने आपको सर्वज्ञाता मानता था।

कुंए में रहनेवाले सभी कीड़ों और मछलियों को पकड़कर वह खाता था। वह अपनी ही ठाठ-बाट से रहता और ऊपर से आने वाले सभी कीड़े-मकोड़ों को खाया करता था।

समुद्र में रहने वाला एक मेढ़क एक दिन सागर के पास घूम रहा था। घूमते-घूमते वह अचानक कुंए में गिर पड़ा। काले मेढ़क ने सोचा कि चलो एक बड़ा शिकार हाथ लगा है। पर देख पाने पर उसकी आशा निराशा में बदल गयी। पहले तो वह डर-सा गया पर सम्मान बचाने के लिए मुखाकृति को बचा लिया।

जन्म के बाद उसने यह पहला मेढ़क देखा और वह भी इसके विपरीत सफेद था। कुंए का मेढ़क काफी अशांति महसूस करने लगा। मोटी आवाज में उसने पूछा—तुम कहां से आये ?

—मैं समुद्र से आ रहा हूं।

—समुद्र से ? यह क्या चीज होती है ?

—समुद्र जल से जलमय है। जिधर भी देखो केवल जल ही जल दिखायी देगा।

—तो क्या तुम्हारा समुद्र मेरे कुंए की तरह है ?

—तुम क्या पागल हो गये हो ? तुम सागर के साथ कुंए की तुलना कैसे कर रहे हो ?

—ओह, गुस्साते क्यों हो ! तो क्या तुम्हारा सागर इतना बड़ा है ?

यह कहकर वह एक बार कूदा। समुद्री मेढ़क बोला—तुम सचमुच पागल हो। किसके साथ किसकी तुलना कर रहे हो। कहां सागर और कहां तुम्हारा कुंआ।

ओह, तुम गुस्सा क्यों जाते हो ? बोलो, तुम्हारा सागर तब क्या इतना बड़ा है ?

यह कहकर वह थोड़ा और जोर से कूदा। मूर्ख से बात न करने में ही भलाई है। सागर वाला मेढ़क चुप ही रहा। तब यह मेढ़क कुंए के एक छोर से दूसरे छोर तक कूद गया और पूछा कि क्या तुम्हारा सागर मेरे कुंए जैसा ही बड़ा है ?

—तुम एक काला भूत हो, महामूर्ख।

तुम्हारे संग बात करने में कोई भलाई नहीं।

—गुस्सा मत करो। केवल यह बता दो कि क्या तुम्हारा सागर मेरे कुंए जैसा बड़ा है।

—तुम एक गदहे हो। तुम्हारा इस कुंए जैसा कोटि-

कोटि कुंए एकत्र करने पर भी सागर का एक हिस्सा पूरा न होगा।

—क्या ? तुम्हारा सागर मेरे कुंए से भी बड़ा है ? यह हो ही नहीं सकता। मुझे मौका पाकर मूर्ख बना रहे हो। मेरे कुंए से बड़ी चीज इस दुनिया में नहीं है और हो भी नहीं सकती। तुम झूठे हो, अतः यहां से निकल जाओ।

समुद्री मेढ़क बोला—यह कुंआ छोड़कर थोड़ा ऊपर आकर देख जाओ भाई। अधिक दूर न जाना होगा। पास ही में समुद्र है। उसे देखकर तुम खुद जान जाओगे कि मैं सच्चा हूं या झूठा और यह भी कि तुम मूर्ख हो या नहीं।

नहीं भाई, मुझे कोई जरूरत नहीं है, सागर देखने की। आज तक इतनी दूर कभी बाहर नहीं गया और तुम आए हो मुझे समुद्र दिखाने। अगर भलाई चाहते हो तो तुरन्त बाहर चले जाओ।

समुद्री मेढ़क ने सोचा कि ऐसे मूर्ख के साथ बातचीत करना ही मूर्खता है। आहिस्ता-आहिस्ता वह ऊपर चला गया। कुएं का मेढ़क तब बहुत खुश हुआ। उसने सोचा—बच्चू मुझसे चालाकी करने आये थे। कैसा मुंह लेकर वापस हुए। सागर-वागर कुछ नहीं सब मनगढ़त बातें हैं। कहां तो रहता है और शरीर पर सफेद रंग पोतकर यहां चला आया। यहां आकर उलूल-जलूल बातें बनाने लगा। अंत में तो खुद ही बनकर चले जाना बड़ा बच्चू को। मगर न जाता तो मैं उसे देख लेता।

जो लोग यह मानते हैं कि उनका मत, उनकी बातें छोड़कर बाकी सब मिथ्या है तो वे कुंए के मेढ़क की तरह हैं। अपने अज्ञान के कूप में बैठे लोग सोचते हैं कि उन्हें छोड़कर जगत् में कुछ शाश्वत नहीं है और उन्हें छोड़कर कोई ज्ञानी व बुद्धिमान भी नहीं है।

ग्राहकों से निवेदन

विवेक शिखा के कृपालु पाठकों को कष्ट के साथ सूचित करना पड़ता है कि कागज के मूल्य और छपाई की दर में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण १९९२ ई० में 'विवेक शिखा' का वार्षिक सदस्यता शुल्क ३० रुपये और आजीवन सदस्यता शुल्क ५०० रु० होगा। हमें विश्वास है कि हमारे पाठक बन्धु इस आर्थिक भार को वहन करने में हमारा साथ देने की कृपा करेंगे।

निवेदक

व्यवस्थापक : विवेक शिखा

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक— स्वामी विदेहात्मानन्द

१९०३ ई० के अप्रैल माह के आसपास लाटू महाराज बलराम मन्दिर लौटे। श्रावण माह तक वहाँ निवास करने के बाद वे ननी बाबू (डॉ० शशि भूषण घोष के भानजे) के साथ झूलन उत्सव देखने से पुरी गये। उस बार वे वहाँ एक महीना रहे।

इस वर्ष दुर्गापूजा के उपरान्त वे पुनः तीर्थाटन को निकले। इस यात्रा के दौरान उनके संगी थे—निवारण दत्त, नन्दलाल ब्रह्मचारी, पूर्णचन्द्र मुखोपाध्याय (पटल बाबू) और राजकुमार वन्द्योपाध्याय। पटल बाबू और राजकुमार बाबू ने मिलकर समस्त व्ययभार वहन किया था। इस यात्रा में वे लोग काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि तीर्थस्थानों को गये थे। अग्रहायण मास के मध्य भाग में वे लोग कलकत्ता लौट आये। मार्ग में एक ब्रह्मचारी को व्यर्थ क्रोध करते हुए देखकर उन्होंने उपदेशपूर्वक कहा—'देखो! ब्रह्मचारी होकर नाराजगी दिखाना उचित नहीं। काम, क्रोध तथा लोभ का दमन करने के लिए ही ब्रह्मचर्य का व्रत लिया जाता है, परन्तु तुम क्या कर रहे हो? ब्रह्मचारी होकर भी अभिशाप दे रहे हो? यह तो अच्छा नहीं! अभिशाप देकर किसी का अकल्याण नहीं करना चाहिए। जो लोगों का मंगल नहीं चाहता, उसकी धर्मपथ में उन्नति नहीं होती।'

उस वर्ष के आखिरी दिनों में वृन्दावन से लौटकर उन्होंने जो बलराम मन्दिर में प्रवेश किया, तो वहीं पर एक एक कर उनके नौ वर्ष बीत गये और तदूपरान्त १९१२ ई० के अक्टूबर में उन्होंने काशीधाम की यात्रा की। इन नौ वर्षों के दौरान वे तीन बार बीमार पड़े थे। एक बार छह महीनों तक उन्होंने अनिद्रा रोग से कष्ट उठाया था। उस समय गिरीश बाबू की कहानियाँ ही उनके अनिद्रा रोग के लिए दवा का काम करती थी। उन्होंने हम लोगों को बताया था—'चार-पाँच दिन तक नींद न आने पर मैं गिरीश बाबू के घर कहानी सुनने को चला जाता। कहानी सुनते-सुनते मुझे नींद आ जाती। मुझे सुनाने के बाद गिरीश बाबू घूमने को निकल जाते। (१९०४)

१९०६-७ ई० में वे तीव्र वात रोग से पीड़ित हुए। उसी समय से वे प्रतिदिन दो-तीन कागजी नीबुओं का रस लिया करते थे। वात के लिए वे उबले हुए करेले भी खाया करते थे। गुरुभ्रातागण उनके इस आहार को लेकर विनोद भी किया करते थे। एक भक्त प्रायः ही उन्हें बंगला का एक कहावत सुनाते थे जिसका भावार्थ है—'करेला खाने से दृष्टि चली जाएगी और देख नहीं सकोगे।' कौन जाने कहीं इसी कारण तो आगे चल कर उनकी आँखों में मोतियाबिन्द नहीं हो गया था! १९०९-१० ई० में एक एक कर उनकी दोनों आँखों का अस्त्रोपचार हुआ था। उन दिनों राखाल महाराज ने उनकी यथोचित व्यवस्था कर दी थी।

१९०३ ई० के अन्त में प्रकाश नामक एक कम्पोजीटर को उनका सेवक होने का सौभाग्य मिला था। वह प्रतिदिन सुबह-शाम लाटू महाराज के लिए चाय, उबले चने, भुने आलू, उबले करेले आदि तैयार कर देता था। बाद में यह कार्यभार पशुपति नामक एक युवक के ऊपर आ गया था। उस सेवक ने काशी में लाटू महाराज की अक्लान्त सेवा की थी।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं, पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करते

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-५

RAMAKRISHNA MISSION HOME OF SERVICE

(GENERAL HOSPITAL)
LUNA, VARANASI-221 010, U. P.

HUMBLE APPEAL FOR FUNDS

The Home of Service, a branch of the Ramakrishna Mission, Belur Math, Howrah, has been serving the poor and afflicted in this Holy City of Varanasi for the last 90 years. From an humble beginning of service of the old and neglected 'Kashivasis' the institution has grown into the present shape of :

(a) An Indoor hospital with 200 beds serving One hundred and Fifty thousand patients annually

(b) Two separate Old Age Homes for men and women who have none to look after. Each Home accommodates forty persons.

(c) Regular and periodical cash relief to the old destitutes and poor living in Benaras who have none to look after and who are only waiting for 'Mukti' through death in this Holy City.

We appeal to you and need your all possible help in the following :

1. A Construction work is in progress for which we need nearly Rs. 10 lacs.
2. Most of the existing buildings are 70 years old and are crumbling fast. The rest are 40 years old and need constant repairs and minor extensions to suit the present requirements. This requires nearly Rs. 6 lacs.
3. The water requirement of our entire campus is far more than the supply. To meet this shortage we immediately need to dig a bore well 400 feet deep with a water storage Reservoir of 500,00 Ltrs capacity which will cost Rs. 10 lacs.
4. The rush of patients in Out Patients Department is ever increasing Average daily attendance of patients in the OPD is about 500. The accommodation of the OPD is too small to provide adequate space for them. We propose to add to our existing OPD Block by constructing a first floor.

TOTAL cost : Under planning stage, estimated at Rs. 10 lacs.

The least we can do is to reproduce extracts from Swami Vivekananda's Appeal for Home of Service, Varanasi :

"Brother, does it not make you pause and think of the marvellous attraction of this wonderful place of preparation for final rest ? Does it not strike you with a mysterious sense of awe—this age-old andnever- ending stream of pilgrims marching to salvation through death ?

If it does,—come and lend us a helping hand. Never mind if your coutribution is only a mite, your help only a little ; blades of grass united into a rope will hold in confinement the maddest of elephants,—says the old proverb".

Please come forward with a generous donation.

Swami Suddhavratananda
Secretary

Note : 1. Cheques and Drafts should Crossed A/C Payee drawn in favour of "Ramakrishna Mission Home of Service."

2. All donations to our institution are exempt u/s 80G of the I. T. Act.

By Courtesy of : M/s. Servolink India, 33/1 Gariahat Road, Calcutta-29

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम

फोन : २६२६

जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

विनम्र निवेदन

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम की स्थापना भगवान श्रीरामकृष्ण के एकमात्र गैर-बंगाली शिष्य और स्वामी विवेकानन्द के गुरु-भ्राता स्वामी अद्भुतानन्द जी महाराज की स्मृति में १९८४ ई० में की गयी। स्वामी अद्भुतानन्द जी का जन्म बिहार राज्य के छपरा जिला के एक गांव में एक निर्धन गड़रिया परिवार में हुआ था। निरक्षर होने पर भी श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक निर्देशन में वे ब्रह्मज्ञ हुए और स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण की अद्भुत सृष्टि जानकर उन्हें स्वामी अद्भुतानन्द नाम से अभिहित किया।

आश्रम ने प्रायः २ एकड़ भूमि ९६,००० रुपये में बिहार सरकार से अर्जित की। श्री रामकृष्ण के बिहार एवं बिहार के बाहर के भक्तों के कृपापूर्ण दान से ३५००० वर्गफीट में स्वामी अद्भुतानन्द स्मृति-भवन का निर्माण हो रहा है जिसमें भगवान का एक गर्भगृह (मन्दिर), प्रार्थना भवन २ कमरा का स्नानागार युक्त सन्त-निवास एक बड़ा पुस्तकाय कक्ष, एक दातव्य औषधालय कक्ष, कार्यालय कक्ष भोजनालय, रसोई घर, राहत-भवन, भण्डार गृह आदि संयुक्त है। इसमें अब तक ७ लाख रुपये खर्च हो चुके हैं। निर्माण कार्य समाप्तप्राय है। किन्तु इसे अन्तिम रूप देने में अभी लगभग ७ लाख रुपये और लगने की सम्भावना है।

अतः आपसे हमारा आन्तरिक एवं विनम्र निवेदन है कि इस महत् कार्य में अपनी सामर्थ्य एवं गरिमा के अनुरूप उदारतापूर्ण दान देकर हमें कृतार्थ करें। इस कार्य में बड़ा दान भी कम है और कम दान भी बहुत बड़ा है। आपका कोई भी दान हमारे लिए बहुत बड़ा सम्बल सिद्ध होगा।

प्रेम और शुभेच्छाओं के साथ

प्रभु सेवा में आपका

डा० केदार नाथ लाभ

सचिव

ध्यातव्य : (१) सभी प्रकार के दान सधन्यवाद स्वीकार किये जायेंगे।

(२) चेक या बैंक ड्राफ्ट "श्री रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम" छपरा के नाम से क्रॉस किये हुए होने चाहिए।

(३) श्री रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम को दिये गये सभी दान आय-कर के अधिनियम ८० जी के अन्तर्गत आय-कर से मुक्त हैं।

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य
धर्म तथा अध्यात्म	
धर्म विज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.५०
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.५०
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य	४.००
वेदान्त	४.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.५०
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०

पुस्तक	मूल्य
योग	
ज्ञानयोग	१४.००
राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)	६.००
प्रेमयोग	५.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	४.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००
जीवनी	
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.५०
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	२.००
सम्भाषणात्मक	
विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
आकाश लाम द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना - ४ में मुद्रित।